छायावादी काव्य में ' सौन्दर्य '

छायावाद-युग पूर्व रीतिकाल में कवियों की दृष्टि रूप सौन्दर्य के बाह्य-आचरण तक ही सीमित रही । उनकी दृष्टि तो ' घाघरि झीन सों, सारी महीन सों ' से लेकर ' झलकें अति आनन सुन्दर गोर, छके दृग राजति कानन छूवें ' तक ही सीमित रहीं । उनके सौन्दर्य-चित्रण में स्थूलता थी, ऐन्द्रिकता थी और रूप - सौन्दर्य का कामुकता पूर्ण चित्रण था । भारतेन्दु युग में भी कवि दृष्टि बाह्य ही रही क्योंकि कवियों का हृदय देश-प्रेम से प्लावित था । अतः सौन्दर्यांकन में वे अपने हृदय को नहीं उड़ेल सके । ' द्विवेदी-युगीन काव्य में तो सौन्दर्य का प्रश्न ही नहीं - वह युग स्वयं सौन्दर्य के प्रति विद्रोह का युग था । ' [१]

परन्तु छायावाद युग में तो कवियों ने सौंदर्य का जो सम्मोहक सूक्ष्म चित्र प्रस्तुत किया वह साहित्यिक-क्रान्ति समझा जाना चाहिए । इन कवियों ने सौंदर्य संबंधी पूर्व स्थूल मान्यताओं को तोड़-फेंका और वे बाह्य सौन्दर्य की अपेक्षा आन्तर-सौन्दर्य, मानस सौन्दर्य, सूक्ष्म सौन्दय तथा रहस्यात्मक सौन्दर्य की ओर एक बारगी चल पड़े। इस काव्य में जहां एक ओर ' सौन्दर्य जलधि उमड़ पड़ा है, वहीं दूसरी ओर सौंदर्य की बाढ़ सी आयी हुई है - ' छलकी - सी बाढ़ सी सौन्दर्य की, अधखुले सस्मित गढ़ों में सीप सी । ' यही वह काव्य है जिसमें ' अरुण -सौन्दर्य ', ' तरुण - सौन्दर्य, ' लाज भरे सौन्दर्य ' और न जाने कितने प्रकार के सौन्दर्य चित्रित हैं जो हिन्दी - साहित्य सदन में जटित रत्न - राजियों से दे दीप्यमान है । छायावाद वस्तुतः आश्चर्य का पुनर्जागरण (Renaissance of wonder) है क्योंकि सौन्दर्य को जिस रहस्य के

---

१ - प्रसाद एवं पंत का तुलनात्मक विवेचन : प्रो० रामरजपाल द्विवेदी : पृष्ठ ६६।

आवरण से ईषत् आवृत कर चित्रित किया गया है वह एक अद्भुद् सौन्दर्य की सृष्टि करता है । वाल्टर पेटर ने रोमांटिक काव्य को सौन्दर्य में वैचित्र्य का समावेश (sence of strangeness added to beauty) कहा है जो वस्तुत: सत्य ही प्रतीत होता है । छायावादी काव्य में कहीं - कहीं असमग्र रूप प्रस्तुत करके एक वैचित्र्य और कौतूहल समन्वित भावना को जन्म दिया गया है :-

नील परिधान बीच सुकुमार
खुल रहा मृदुल अधखुला अंग ।

और पंत जी भी कहते हैं :-

अधखुले अंगों का मधुमास
तुम्हारी छवि का कर अनुमान
प्रिय प्राणों की प्राण ।

ठीक इसी के अनुरूप वर्ड्सवर्थ ने भी कहा है :-

'A violet by a mossy stone
Half-hidden from the eye"

छायावादी कवि ने अपना दृष्टि मुख्यत: मानस-सौन्दर्य या आन्तर-सौन्दर्य पर ही निबद्ध किया है । प्रकृति का सौन्दर्य, नारी का सौन्दर्य, पुरुष का सौन्दर्य, जगत और जीवन की बहुविध स्थितियों का सौन्दर्य और कवि - चित में निवसित या कल्पना का सौन्दर्य - ये सभी नाना रूपों में छायावादी काव्य में अभिव्यक्त हुए । प्राचीन कवियों की शक्ति अन्तरजगत के सौन्दर्य को अनावृत करने में उस सीमा तक नियोजित न हो सकी जितनी स्थूल शारीरिक सौन्दर्य के चित्रण पर, परन्तु छायावादी कविता मानस - जगत के सौन्दर्य के चित्रण में विशेष रूप से प्रवृत हुई । छायावादी काव्य में यह सौन्दर्य चित्रण द्विवेदी युगीन छवि चित्रों की अपेक्षा अधिक अनुभूति और कल्पना प्रेरित हैं । सौन्दर्य चित्रण

छायावादी कवियों का सौन्दर्य विधान : डा० सूर्य प्रसाद : प्रस्तावना ।

में इन कवियों ने प्राचीन पद्धति का परित्याग किया है। `इनका सौन्दर्य विधान इतना व्यापक है, इनका फलक इतना विराट् है और इनकी सौन्दर्य-सर्जना इतनी विलक्षण है कि उसमें प्राय: जीवन का सर्वस्व समाहित हो गया है।`[१]

छायावादी कवियों के सौन्दर्य-विषयक उद्गार :-

`प्रसाद` ने सौन्दर्य, सुन्दर, अभिराम, छवि, लावण्य आदि अनेक शब्दों का व्यवहार कर अपने पूजा-सुष्पों को सौन्दर्य-देव के चरणों पर अर्पित किया है:-

१ - उज्वल वरदान चेतना का
सौन्दर्य जिसे सब कहते हैं।` (कामायनी)

२ - सौदर्यमयी चंचल कृतियां
बनकर रहस्य है नाच रही
मेरी आंखों को रोक वही
आगे बढ़ने से जांच रहीं। (कामायनी)

३ - सुन्दरता के इस परदे में,
क्या अन्य धरा कोई धन है?` (कामायनी)

४ - सौन्दर्य - जलधि से भर लाये,
केवल तुम अपना गरल पात्र।` (कामायनी।

५ - सुन्दरता का कुछ बढ़े मान - (कामायनी)

६ - मैं अपलक इन नयनों से, निरखा करता उस छवि को
प्रतिभा डाली भर लाता, कर देता दान सुकवि को -(आंसू)

---

१ - छायावादी कवियों का सौन्दर्य विधान : डा० सूर्य प्रसाद : प्रस्तावना।

७ – लावण्य – सिंधु राहै सा, जिस पर वारी बलिहारी ।
उस कमनीयता कला की, सुषमा थी प्यारी प्यारी । (आंसू)

८ – छायामय कमनीय कलेवर – (कामायनी)

६ – छायामय सुषमा में विह्वल – (कामायनी)

निराला :

निराला जी 'ईश्वर, सौन्दर्य, वैभव और विकास के कवि हैं।'[१] उनके काव्य में सौन्दर्य की चर्चा है। पंचेन्द्रिय बोध-प्राप्त सौन्दर्य लालसा उनमें है।

१ – 'स्पर्श रूप में अनुभव रोमांच
हर्ष रूप में परिचय
विनोद सुख गंध में
रस में मज्जनादि
शब्द में अलंकार।' (अनामिका : पृष्ठ १८२)

२ – रूप-रस-शब्दज संसार । (परिमल : पृष्ठ २५)

३ – 'सौन्दर्य गीत बहु गंध, भाषा भावों के छन्द बंध' (अनामिका:पृष्ठ २३)

पंत जी ने निराला के प्रति लिखा :-

'अनामिका का कवि वास्तव में सौन्दर्य ज्योति संवृत्त कवि है।'[२] वस्तुत: निराला जी 'जनजनके जीवन के सुन्दर' पदों के गायक हैं। उन्होंने तो स्पष्ट कहा है :- 'गाने दो प्रिय मुझे भूलकर अपनापन अपार जग सुन्दर।' (गीतिका)

---

१ – निराला की आत्म कथा : पृष्ठ ४।
२ – छायावाद : पुनर्मूल्यांकन : पंत : पृष्ठ ३३।

सुमित्रानन्दन पंत :

पंत जी तो ` सुन्दरम् ` के कवि ही हैं । उनके काव्य में सौन्दर्य का उत्तरोत्तर विकास है । उन्होंने स्वयं कहा है :-

` सुन्दर से नित सुन्दरतर
सुन्दरतर से सुन्दरतम
सुन्दर जीवन का क्रम रे
चिर सुन्दर जन्म मरण रे -----
--------- सुन्दर शैशव यौवन रे ।` (गुंजन)

` युगान्त ` में वे कहते हैं :-

जग जीवन में जो चिर महान
सौन्दर्यपूर्ण ओ सत्य प्राण
मैं उसका प्रेमी बनूं ।

` ग्राम्या ` में पंत जी ने सुन्दरम् के विषय में उद्घोषणा किया है -

` आज भी सुन्दरता के स्वप्न, हृदय में भरते मधु गुंजार । ` (ग्राम्या, पृष्ठ ६२)

यद्यपि ` ग्राम्या ` में पंत जी की विचारधारा ` पल्लव ` की विचारधारा से भिन्न है, फिर भी उन्होंने ` ग्राम्या ` में सौन्दर्य-प्रेम की सफल अभिव्यक्ति की है । ` सौन्दर्य कला ` नाम्नी कविता में वे ` नव्य सौन्दर्य बोध ` की ओर झुके हैं । यह नव्य सौन्दर्य बोध और कुछ भी नहीं ` जीव - प्रेम ` है -

` जग क्या जग के साधन शोभन
सुन्दरता के सब प्रयोग लग रहे प्रकृति के फीके
जीव-प्रेम के सम्मुख रे, जीवन-सौन्दर्य पराजित ।` (ग्राम्या, पृष्ठ ७७)

इस प्रकार पंत जी के काव्यों में ' सुन्दरम् ' की संसृष्टि आरंभ से विद्यमान है । पहले उसकी अभिव्यक्ति प्रकृति के परिवेश में हुई और उत्तरवर्ती काव्यों में जीवन-सौन्दर्य, मानव-सौन्दर्य आदि रूपों में । सुन्दरता को वे परम कल्याणी और समस्त ऐश्वर्यों का मूल माना है :-

' अकेली सुन्दरता कल्याणि सकल ऐश्वर्यों की संधान ।' (पल्लव : पृष्ठ ११८)

अतः कवि सुन्दरता का अन्वेषण करने लगता है - ' विश्व कामिनी की पावन छवि, मुझे दिखाओ करुणावान ।'

महादेवी वर्मा :

छायावाद की प्रमुख कवियित्री महादेवी वर्मा के भी सौन्दर्य विषयक मत हैं । उन्होंने सौन्दर्य को काव्य का साध्य नहीं माना है । उनकी दृष्टि में सौन्दर्य काव्य का साधक है । वे ' सौन्दर्य को साध्य न मानकर साधक मात्र मानती है ।[१] संक्षेप में, महादेवी का सौन्दर्य विषयक यही मत है ।

डा० राम कुमार वर्मा ने भी सौन्दर्यप्रान के प्रति अपनी उत्कट लालसा व्यक्त की है :-

' दिव्य जीवन है कवि का गान
यही आत्मा की तृषित पुकार ।' (रूपराशि)

कुल मिलाकर, हम कह सकते हैं कि ' छायावादी काव्य का एक मुख्य विषय सौन्दर्य भी है । इसकी अभिव्यक्ति अनेकानेक रूपों में हुई है । डा० रवीन्द्र भ्रमर ने ' छायावाद ' में सौंदर्य को इस काव्य का प्रमुख विषय माना है ।

---

१. - दीपशिखा : चित्रंक के कुछ शब्द : पृष्ठ ५ ।

छायावादी - काव्य में सौन्दर्य-विधान

छायावादी काव्य का समस्त कलेवर ही सुन्दरता पूरित है । छायावादी सौन्दर्य व्यंजना को हम दो प्रमुख भागों में बांट सकते हैं :-

क - विषयगत सौन्दर्य और

ख - कलागत सौन्दर्य ।

छायावादी काव्य में वर्णित विषयक सौन्दर्य को हम सर्वप्रथम लेते हैं । इसमें निम्न सौन्दर्य प्रमुख हैं :-

१ - रूप-सौन्दर्य - प्रत्येक छायावादी कवि में है। ` प्रसाद ` जी ने रूप सौन्दर्य में अतिसूक्ष्म सौन्दर्य को देखा है । ` कामायनी ` की निम्नांकित पंक्तियों में मानों उन्होंने रीतिकालीन कवियों को ही संबोधित किया है :-

` तुमने तो क्या सदैव उसकी, पाई सुन्दर जड़ देहमात्र ।
सौन्दर्य जलधि से भर लाए, केवल तुम अपना गरल पात्र । ` (कामायनी)

` चन्द्रगुप्त ` में उन्होंने देह - सौन्दर्य को मादक कहा है :-

` कैसी कड़ी रूप की ज्वाला ` - (चन्द्रगुप्त : पृष्ठ १७६)

पुनश्च में वे कहते हैं कि :-

` रूप-सुधा के दो हक् प्यालों ने ही मति बेकाम की । ` (चन्द्रगुप्त)

महाकवि निराला ने भी रूप-सौन्दर्य की सुन्दर सृष्टि निम्न पंक्तियों में की है:-

` सृष्टिभर की सुन्दर प्रकृति का सौन्दर्य भाग
खींच कर विधाता ने भरा है इस अंग में
प्रकृति की सारी सौन्दर्य सृष्टि लज्जा से
सि झुका लेती है, जब देखती है मेरा रूप । (परिमल : पृष्ठ २३३)

कविवर पंत ने तो स्पष्ट घोषित किया है :-

" मुझे रूप ही भाता
प्राण, रूप ही मेरे उर में मधुर भाव भर जाता ।
मुझे लुभाता रूप रंग रेखा के मिस संसार
प्राण, रूप का सत्य रूप के भीतर नहीं समाता - " (युगवाणी, पृष्ठ ८२)

प्लेटो के अनुसार वस्तुओं का बाह्य रूप ही उसके भीतर का द्योतक है । पंत जी भी स्वीकार करते हैं :-

" बाह्य रूप हो रम्य वस्तु का होंगे रम्य विचार
रूप भाव आधार । " (युगवाणी : पृष्ठ ८२)

पंत जी रूप बोध को " रूप का मृदंग " कहते हैं । उन्होंने तो रूपासक्ति का आमंत्रण किया है -

" रूप विरक्त मत होओ । " (ज्योत्स्ना और बूढ़ा चाँद, पृष्ठ ८२)

इस प्रकार सभी प्रमुख छायावादी कवियों ने रूप-सौन्दर्य के प्रति अपने प्रेम को प्रदर्शित किया है । रूप-सौन्दर्य की अभिव्यक्ति मुख्यत: नारी, पुरुष और शिशु के सौन्दर्य-चित्रों के रूप में हुई है ।

नारी-सौन्दर्य - रीतिकालीन कवियों की भाँति छायावादी कवियों ने भी नारी के बहिरंग का ही चित्रण नहीं किया है, अपितु उन्होंने उसकी अन्तरात्मा की ओर भी झाँका है । छायावादी कवि ने नारी के " सुन्दर जड़ देह मात्र " से ही प्रेम नहीं किया । उसने तो उसकी सुन्दर आत्मा और हृदय को भी देखा । एक ओर जहाँ वह कहता है :-

" तुम्हारे चल पद चूम निहाल,
मंजरित अरुण अशोक सकाल
स्पर्श से रोम-रोम तत्काल
सतत सिंचित प्रियंगु की बाल । " (गुंजन)

वहीं दूसरी ओर वह अपनी प्रिया के पावन-स्पर्श में अलौकिक माधुर्य के भी दर्शन करता है :-

"तुम्हारे छूने में था प्राण
संग में पावन गंगा - स्नान,
तुम्हारी वाणी में कल्याणि
त्रिवेणी की लहरों का गान -

इसीलिए कवि को नारी के रोम-रोम से प्रेम हो उठा है :-

तुम्हारे रोम-रोम से नारि !
मुझे है स्नेह अपार
तुम्हारा मृदु उर ही सुकुमारि !
मुझे है स्वर्गागार (पल्लव : पृष्ठ ११८)

छायावाद में नारी के आन्तिरिक सौन्दर्य पर भी विशेष बल है। उसके हृदय की सुकुमारता, दयाशीलता, ममता आदि गुणों पर वह अपने आपको निछावर कर देता है:-

"दया, माया, ममता लो आज
मधुरिमा लो अगाध विश्वास
हमारा हृदय-रत्न-निधि स्वच्छ
तुम्हारे लिए खुला है पास।" (कामायनी)

परन्तु छायावादी कवि नारी के बाह्य रूप के प्रति भी उदासीन नहीं है। इस बाह्य रूप वर्णन में भी बहिरंग वर्णन जैसी स्थूलता नहीं है। प्रसाद, पंत, प्रभृति कवियों ने रूप - सौन्दर्य का जो बाह्य वर्णन किया है उसमें भी सूक्ष्मता विद्यमान है। पंत जी ने अपनी प्रिया को "अमृत की जीवित लहर की बांह" कहा है। "प्रसाद" का यह चित्रण अवलोकन करें -

थी किस अनंग के धनु की
वह शिथिल शिंजिनी दुहरी
अलबेली बाहुलता या
तनु छवि की नव लहरी - (आंसू)

छायावादी कवियों ने नारी के भाव-सौंदर्य की ओर भी दृष्टि डाली । रीतिकालीन कवि को उसकी भौंहें धनुष सी लगती थीं, आंखे तीर की तरह, और हंसी बिजली की तरह, किन्तु छायावादी कवि को उसकी सरल भौंहों में आकाश, हंसी में शैशव की सरलता और आंखों में मूर्तिमान प्रेम ही दिखाई पड़ता था । छायावादी कवि की नारी के उर में उषा का आवास, उसके स्वभाव में चांदनी की शीतलता और विचारों में बच्चों की सरलता के संदर्शन होते हैं:-

उषा का था उर में आवास
मुकुल का मुख में मृदुल विकास
चांदनी का स्वभाव में वास
विचारों में बच्चों की सांस (पल्लव : पृष्ठ २६)

इस प्रकार के वर्णनों से नारी विषयक पूर्वधारणाओं में महान परिवर्तन आया । उसके प्रति सबके हृदय में आदर-भाव का उदय हुआ । छायावादी कवि ने नारी के सूक्ष्म आन्तरिक सौन्दर्य का चित्रण करके यह उद्घोष किया कि बाह्य रूप छटा तो काल के प्रवाह में धूमिल हो जाता है परन्तु मानस-सौन्दर्य सदा बना रहता है। नारी का आत्मिक सौन्दर्य जो छायावादी काव्य में विद्यमान है, वह समय के अजस्त्र प्रवाह में चमकता ही जाएगा, विनष्ट नहीं हो सकता । ` कामायनी ` में ` प्रसाद ` जी ने जो अमर पंक्तियां लिखदी है वह नारी- सौन्दर्य की रत्न-राजियां होकर हिन्दी काव्य-साहित्य का सनातन श्रृंगार बन गयी हैं :-

(क) नारी तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास रजत नग-पग तल में
पीयूष स्त्रोत सी बहा करो, जीवन के सुन्दर समतल में ।` (कामायनी)

(ख) ` मनु ने देखा ` कितनी विचित्र
वह मातृमूर्ति थी, विश्वमित्र - ` (कामायनी)

उनके तरुण-सौन्दर्य का चित्रण कवि ने और भी यथार्थवादी भूमि पर किया है:-

चिन्ता कातर बदन हो रहा
पौरुष जिसमें ओत-प्रोत
उधर उपेक्षामय यौवन का
बहता भीतर मधुमय स्त्रोत । (कामायनी)

पंत जी ने महात्मा गांधी के जो चित्र अंकित किए हैं वे भी अत्यन्त सुन्दर बन पड़े हैं। उसमें भी बाह्य की अपेक्षा अन्तर्मानव का ही चित्रण हुआ है :-

तुम मांसहीन, तुम रक्तहीन,
हे अस्थि शेष ! तुम अस्थिहीन
तुम शुद्ध-बुद्ध आत्मा केवल
हे चिर- पुराण, हे चिर नवीन । (युगान्त)

पुरुष के बाल और शिशु रूपों का भी चित्रण यत्र-तत्र छायावादी काव्य में हुआ है। कामायनीकार ने मानव-शिशु का एक चित्र उपस्थित किया है :-

` मां ` - फिर एक किलक दूरागत, गूंजी उठी कुटिया सूनी,
मां उठ दौड़ी मेरे हृदय में लेकर उत्कण्ठा दूनी,
लुटरी खुली अलक, रज-धूसर बाहें आकर लिपट गयीं
निशा-तापसी का जलने को धधक उठा बुझती धूनी । ` (कामायनी)

महाकवि पंत ने भी शिशु-चित्रण प्रस्तुत किया है :-

मृदुलता ही है बस आकार
मधुरिमा कवि शृंगार,
न अंगों में है रंग उभार

न मृदु उर में उदगार,
निरे स्वांसों के पिंजर-द्वार !
कौन तुम हो अकलंक, अकाम ?. (पल्लव : पृष्ठ ११३)

इस प्रकार छायावादी कविता में नारी, पुरुष, शिशु और बालकों का सुन्दर चित्रण हुआ है। इस चित्रण की विशेषता है उसकी अन्तर्मुखीनता।

लोकोत्तर दिव्य रूप विधान :- स्त्री, पुरुष एवं शिशु चित्रों के साथ ही लोकोत्तर विभूतियों का भी चित्रण छायावादी काव्य में हुआ है। इसमें किन्नरी, अप्सरा, दिक्कुमारिकाएं एवं परियों का वर्णन है। छायावादी काव्य में अप्सरावृत्ति इसी को कहते हैं। कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते हैं :-

क - ये सुकुमारी रूप सुमन से, केवल वर्ण गंध में फूलें
इन अप्सरियों की तानों के, झूम रहे हैं सुन्दर झूले। (कामायनी)

ख - अरी अप्सरे ! उस अतीत के
नूतन गान सुनाओ (कामायनी)

ग - सौरभ का फैला केश जाल
करती समीर परियां विहार - (पल्लव)

घ - फिर परियों के बच्चों से हम
सुभग-सीप के पंख पसार - (पल्लव)

ङ - कभी अचानक भूतों का सा
प्रकटा विकट, महा आकार

इस प्रकार छायावादी काव्य में लोकोत्तर दिव्य रूप विधान की भी सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

रूप - सौन्दर्य - प्रसाधन :- इस काव्य में रूप-सौन्दर्य का जो महत्तर विधान हुआ है उसके कुछ स्पष्ट प्रसाधन दर्शनीय होते हैं :-

१ - तनिमा - प्राय: सभी छायावादी कवियों ने इसका सहारा लिया है:-

अंग भंग तनिमा बन मृदु देही - स्वर्ण धूलि - पृष्ठ १३१
लतासी लचीली देह तनिमा - कला और बूढा चांद, पृष्ठ १८६
तुम्हारी तनु-तनिमा लघुभार - गुंजन, पृष्ठ ५८
तनु में तनु तनिमा - अनामिका, पृष्ठ ६६
अंग लतिका सी गगन पर - कामायनी
कंपित लतिका सी लिए देह - कामायनी
लवंग लता - तुलसीदास

दुबली-पतली देह लता लौनी लम्बाई - अर्चिमा, पृष्ठ ५६

२ - गठन -

अवयव की दृढ़ मांस पेशियां - (कामायनी)
नंगे तन गदराये सांवले सहज छबीले - रश्मिबंध
पेट - पीठ दोनों मिलकर हैं एक - अपरा
श्यामतन, भर बंधा यौवन - अपरा

३ - वर्ण दीप्ति -

नचाता पलकों पर आलोक - अनामिका, पृष्ठ ८५
नत नयनों का आलोक उतर - अनामिका, ४७

४ - नख शिख या अंग प्रत्यंग वर्णन -

नख शिख लिखे लिखे
तन रतनार दिखे
नवल सरोज उरोज, माल वह
दशन पंक्ति, कुन्दावकलित हर ------ (निराला : साध्यकाकली, पृष्ठ १७)

नखशिख वर्णन में मुख, दशन, नासिका, कपोल चिबुक, नेत्र, भृकुटि, ललाट, कंठ, ग्रीवा, स्कन्ध, बाहु, भुजदण्ड, कटि, उदर, नितंब, जघन, चरण, करतल तथा अंगुलियों आदि

का चित्रण हुआ है । मुख का एक चित्रण देखें :

क- आह ! वह मुख ! पश्चिम के व्योम
बीच जब घिरते हों घनश्याम,
अरुण रवि मंडल उनको भेद,
दिखाई देता हो छविधाम । (कामायनी)

ख- याकि, नव इन्द्र नील लघु शृंग
फोड़कर चमक रही हो कान्त
एक लघु ज्वालामुखी उचित
माधवी रजनी में अश्रान्त । (कामायनी)

संध्या - सुन्दरी के बाहों का चित्र यहां है :-

अलसता की सी लता
किन्तु कोमलता की वह कली
सखी नीरवता के कंधे पर डाले बांह
छांह सी अम्बर-पथ से चली । - (अपरा, पृष्ठ २२)

डा० सूर्य प्रसाद दीक्षित ने ' छायावादी कवियों का सौन्दर्य विधान ' ग्रन्थ में महादेवी जी के नेत्र सौन्दर्य-वर्णन पर लिखा है कि - महादेवी जी की नेत्राकृतियों में एलोरा शैली का अन्तः प्रभाव है ।[१] इस प्रकार छायावादी काव्य में अंग-प्रत्यंगों का बहुत ही सुन्दर वर्णन हुआ है ।

---

१ - छायावादी कवियों का सौन्दर्य विधान : डा० सूर्य प्रसाद दीक्षित : पृष्ठ ५३ ।

२ - रस-सौन्दर्य :- रूप सौन्दर्य के बाद छायावादी काव्य में रस -सौन्दर्य की भी चर्चा हुई है । छायावादी काव्य में रस-विषयक उक्तियां इसका प्रमाण हैं:-

क - पीता हूं, हां में पीता हूं
यह स्पर्श, रूप, रस, गंध भरा - (कामायनी)

ख - शब्द, स्पर्श, रस, गंध दृष्टि - (कामायनी)

ग - लेकर मधु स्पर्श, शब्द, रस, गंध दृष्टि - (अतिमा)

घ - रूप, रंग, रस, स्पर्श मुखर जीवन - (सोवर्ण)

ङ - मांग रहे हैं जीवन का रस - (कामायनी)

च - यहां अछूत रहा जीवन रस - (कामायनी)

छ - रसधारा से संचित - (कामायनी)

पंत जी ने रस को इस प्रकार परिभाषित किया है -

` कवि, क्या कवित्व ? रस - सिद्ध शब्द
क्या रस ? ध्वनि समाधि वाणी से पर
क्या अमर काव्य ? रसमय दर्शन । ` [१]

निराला जी ने रस-सौन्दर्य की चर्चा करते हुए कहा कि :-

` हुआ जो काव्य का सिंचन
नहीं है मूल वह रस का । ` (सान्ध्यकाकली : पृष्ठ ७१)

छायावादी काव्य में सभी रसों का वर्णन हुआ है । मुख्यता है श्रृंगार की । संयोग का एक चित्र देखें :-

परिरंभ कुंभ की मदिरा
निश्वास मलय के झोंके
मुख चन्द्र चांदनी जल से
मैं उठता था मुंह धोके । (आंसू)

---

१ - वीणा : पंत : ` किरण ` शीर्षक कविता, पृष्ठ ८६ ।

पंत जी का संयोग वर्णन भी दर्शनीय है :-

` शीश रख मेरा सुकोमल जांघ पर
शशिकला सी एक बाला व्यग्र हो । ` (ग्रन्थि)

निराला जी ने ` जुही की कली ` में भी संयोग - वर्णन किया है । शृंगार के विरह वर्णन से तो समूचा छायावादी काव्य भरा पड़ा है । प्रसाद का समस्त ` आंसू ` का इसका एक अच्छा उदाहरण है । महादेवी जी ने जीवन को विरह - सम्भूत ही माना है :- ` विरह का जलजात जीवन ` ।

शृंगार के अतिरिक्त करुण - रस की भी व्यंजना छायावादी काव्य में हुई है । पंत जी तो कविता का उद्भव ही करुणा से मानते हैं :-

वियोगी होगा पहला कवि
आह से उपजा होगा गान
उमड़कर आंखों से चुपचाप
बही होगी कविता अनजान - (पल्लव)

और -

विश्ववाणी ही है क्रन्दन
विश्व का काव्य अश्रुकन - (पल्लव)

महादेवी जी तो अपने ` प्रियतम ` से कहती हैं -

` तुमको करुणा में ढूंढा, तुममें ढूंढूंगी करुणा । `

इसी प्रकार पंत जी की ` परिवर्तन ` नाम्नी कविता में भयंकर, रौद्र रसों का अच्छा वर्णन है । ` कामायनी ` में वात्सल्य का मधुर सन्निवेश है ।

३ - विषयगत अन्य-सौन्दर्य :- रूप और रस सौन्दर्य के अतिरिक्त छायावादी काव्य में विषयगत अन्य सौन्दर्य चित्रण है। कुछ नीचे दिये जाते हैं :-

(क) गंध सौन्दर्य

(ख) स्पर्श सौन्दर्य

(ग) ध्वनि सौन्दर्य :

१ - प्रकृति ध्वनियां - कोकिल की काकली, खग-कूजन, भ्रमर-गुंजर, पत्रों का मर्मर, पवन खसन, घन गर्जन, वर्षण, जलप्रवाह, तूफान, प्रलय आदि।

२ - मानवीय ध्वनि-सौन्दर्य

(घ) प्रकृति सौन्दर्य - पहले वर्णन हो चुका है।

(ङ) मनः सौन्दर्य आदि।

कलागत - सौन्दर्य :- जहां छायावादी काव्य में विषयगत अनन्त सौन्दर्य बिखरे पड़े हैं, वहीं दूसरी ओर कलात्मक सुन्दरता का कुछ कम नहीं है। इसके क्षेत्र अनेक हैं :-

(क) भाषा सौन्दर्य

(ख) शिल्प-सौन्दर्य

(ग) बिम्ब या प्रतीक सौन्दर्य

(घ) अलंकार सौन्दर्य

इन सबका विस्तृत विवेचन आगे के पृष्ठों में किया जायगा।

निष्कर्ष :

इस प्रकार छायावादी काव्य का समस्त कलेवर ही सौन्दर्य - सम्पूरित है। सौन्दर्य की ऐसी यंजना समस्त हिन्दी काव्य साहित्य में दुर्लभ है। " शृंगार काव्य में जब कि जड़ - सौन्दर्य है, छायावादी में चेतन्य स्वरूप। सगुण काव्य में भी यहीं चेतन्य स्वरूप है, किन्तु उसका आलम्बन है व्यक्ति - जबकि छायावाद का आलम्बन है प्रकृति समस्त सृष्टि। छायावाद निसर्ग के चान्द्रिका - धौत स्पर्श से शृंगार काव्य का शुक्ल पक्ष बन गया है।"[१] यहां कौतूहल समन्वित सौन्दर्य है। छायावादी काव्य में सौन्दर्य का जो विराट रूप है वह अलग से विवेचन की अपेक्षा रखता है और इस विषय पर पर्याप्त कार्य भी हो चुका है। वस्तुतः छायावाद सौन्दर्य-काव्य है।

---

१ - युग और साहित्य : श्री शान्ति द्विवेदी : पृष्ठ २२।

३ छायावादी काव्य में ' प्रणय '

' प्रसाद ' की प्रणय-दृष्टि :

' प्रसाद ' जी प्रेम को सर्वस्व मानते हैं :-

' प्रेम जगत का चालक है, इसके आकर्षण में खिंच के
मिट्टी का जल, पिण्ड सभी, दिन रात किया करते फेरा
इसी गर्मी मर मरु, धरणी, गिरि, सिन्धु सभी निज अन्तर में
रखते हैं आनन्द सहित, है इसका अमित प्रभाव महा । '

प्रेम जीवन का एक अत्यन्त पावन और आलोकमय उपकरण है ' जिसके प्रकाश में संकल्प कर्म बनते कोमल उज्ज्वल उदार । ' प्रसाद जी के अनुसार प्रेम मानव को उदार और सहृदय बनाता है । प्रेम केवल दान और समर्पण ही जानता है, वह किसी की प्रत्याशा और उपेक्षा नहीं करता :-

इस अर्पण में कुछ और नहीं
केवल उत्सर्ग झलकता है ।
मैं दे दूं और न फिर कुछ लूं
इतना ही सरल झलकता है । (कामायनी)

उदात्त-प्रेम भौतिक जीवन के बंधनों को नहीं स्वीकार करता । वह तो प्रेमी और प्रेमिका के जन्म-जन्मान्तर की वस्तु हुआ करता है । प्रसाद जी के ' प्रेम-पथिक ' में यह सात्विक प्रेम मिलता है । यहां प्रेम को भौतिक धरातल से ऊपर उठाया गया है । ' आंसू '

में भी प्रसाद ने प्रणय वर्णन किया है । कवि ने अपने निष्ठुर प्रिय से प्रेम लिया है और प्रिय के विषाय आचरण पर भी उसका प्रेम क्षीण नहीं होता :-

` अब छूटता नहीं छुड़ाए
रंग गया हृदय है ऐसा
आंसू से धुला निखरता
यह रंग अनोखा कैसा । ` - (आंसू)

प्रसाद के प्रेम में अर्पण की लालसा है, वासना की लालच नहीं, मोती - मोह का कालुष्य नहीं । इसका सीधा-सादा कारण यह है कि उनका प्रेम कायिक-सौन्दर्य एवं दृष्टिगत - सौन्दर्य के आधार पर कहीं नहीं टिका है । उनके प्रेम में आत्मा-समर्पण ही है किसी वस्तु की लालसा नहीं । आनन्द तो प्रेम की प्यास बनी रहने में है, उसकी परितृप्ति में नहीं । यदि चातक की प्यास बुझ जाय तो स्वाति की लघु बूंद की महत्ता ही क्या ? यदि दीपक की लौ शीतल हो जाय तो पतिंगा के प्रेम की दुहाई ही क्या ? यदि मरु स्वयं मगवान बन जाय तो तपस्या का गौरव ही क्या ? अत: एक क्षण प्रसाद जी यह कहते हैं :-

` मुझको न मिला रे कभी प्यार । `

तो दूसरे क्षण ही वे आत्मोत्सर्ग की भाषा में कहते हैं :-

पागल रे ! वह मिलता है कब ?
उसको तो देते ही हैं सब,
आंसू के कन - कन ।

इस आत्मोत्सर्ग के कारण ` प्रसाद ` जी का प्रेम उदात से उदात्तर और उज्वल से उज्वलतर होता गया है । प्रेम का सच्चा आनन्द तो प्रिय से विमुक्त रहने में है । कवि को विश्वास है कि उसका प्रिय उससे अवश्य मिलेगा और प्रिय का हृदय उसकी

आहों से अवश्य ही द्रवीभूत होगा -

`इस शिथिल आह से खिंचकर
तुम आओगे, आओगे ।
इस बढ़ी व्यथा को मेरी
रो रो कर अपनाओगे । (आंसू)

`प्रसाद जी के प्रणय की यह विशेषता है कि वह मर्यादित रहती है । उसमें शील, संयम और शिष्टाचार का बंध कभी नहीं टूटता । उसमें अश्लीलता, अश्लीलता और उद्दाम तो है ही नहीं । अतः प्रेम लौकिक और अलौकिक दोनों ही भूमियों को स्पर्श करता हुआ दिखाई देता है । एक-तरफ उसमें स्थूलता के पंक हैं तो दूसरी ओर तज्जन्य आध्यात्मिक सूक्ष्मता को बिखेरने वाले सुगन्ध भी :-

`ये सब स्फुलिंग हैं मेरी
इस ज्वालामयी जलन के
कुछ शेष चिन्ह हैं केवल
मेरे इस महा- मिलन-के ।` (आंसू)

यहां अंतिम पंक्ति का संबंध आध्यात्म से है । इसीलिए तो `प्रसाद का प्रेम स्पृहणीय मार्ग से आगे बढ़ता है, जिसके एक ओर स्वर्ग की सीमा है तो दूसरी ओर संस्कृत एवं शिष्ट मनुष्यता की । यदि कोई एक ओर भटक जाए तो स्वर्गीय हो जाए । दूसरी ओर भटकने से भी कोई मनुष्यता से नीचे नहीं गिर सकता, फिर भी स्वर्ग का दिव्य-क्षितिज उसकी आंखों से ओझल न हो सकेगा । इनका प्रेम दृश्य लौकिक सौन्दर्य पर कुछ देर टिककर अलौकिक लावण्य की ओर उन्मुख होता गया है ।`[१]

---

१ - छायावादी काव्य : डा० कृष्ण चन्द्र : पृष्ठ १२६ ।

` निराला ` की प्रणय - दृष्टि :

` प्रेम सदा ही तुम असूत्र हो
उर - उर के हीरों के हार,
गूथे हुए प्राणियों को भी
गूथे न कभी, सदा ही सार ` (अनामिका)

` निराला ` के अनुसार, प्रेम असूत्र है, वह निर्बन्ध और स्वच्छन्द है । वह प्रत्येक उर में हीरे के समान व्याप्त है । प्रसाद की भांति निराला ने भी प्रेम की पावनता का आख्यान किया है । उनकी ` जुही की कली ` प्रेम का पावनत्व प्रस्तुत करती है:-

विजन -बन-वल्लरी पर
सोती थी सुहाग भरी
स्नेह-स्वप्न-मग्न अमल कोमल तनु तरुणी
जुही की कली,
दृग बन्द किए शिथिल पत्रांक में ।

` रेखा ` नाम्नी कविता में किशोर और यौवन के सन्धिकाल में उठने वाली समस्त भावनाओं का चित्रण है -

` यौवन के तीर पर प्रथम आया था जब
स्त्रोत-सौन्दर्य का,
वीचियों में कलख चुम्बित था प्रणय का,
था मधुर आकर्षणामय।`

` प्रेयसी ` में प्रेम-रूप-वारुण्य की शोभा के प्रति आकर्षण से उत्पन्न होता है । प्रथमागत यौवन के तरंगों से नायिका के अंग - अंग घिर जाते हैं, वह ज्योतिर्मयी लतिका

से प्रकाशित हो उठती है :-

` घेर अंग - अंग को
लहरी तरंग वह प्रथम तारुण्य की
ज्योतिर्मय लता-सी हुई मैं तत्काल
घेर निज तरु तन ।
दृगों को रंग गयी प्रथम प्रणय रश्मि,
चूर्ण हो विच्छुरित - ` (अपरा)

अंत में इस रूपासक्ति ने प्रिय से मिलन करा ही दिया -

` आई मैं द्वार पर सुन-प्रिय-कण्ठ ध्व
श्रुत जो बजता रहा था झंकारभर
जीवन की वीणा में
सुनती में जिसे ।
पहचाना मैंने, हाथ बढ़कर तुमने गहा
चल दी मैं मुक्त, साथ । (अपरा)

अपार्थिव प्रेम-व्यंजना भी निराला ने की है । ` राम की शक्ति पूजा ` में प्रथम दृष्टि में प्रेम का कमनीय पवित्र चित्र खींचा गया है :-

` याद आया उपवन
विदेह का - प्रथम - स्नेह का लतान्तराल मिलन
नयनों का-नयनों से गोपन - प्रिय सम्भाषण
पलकों का पलकों पर प्रथमोत्थान पतन
कांपते हुए किसलय, झरते पराग समुदाय
गाते खग नवजीवन - परिचय, तरु - मलय - वलय
ज्योति: प्रपात स्वर्गीय, ज्ञात छवि-प्रथम स्वीय
जानकी नयन-कमनीय प्रथम कम्पन तुरीय । ` (अपरा)

इस प्रकार निराला जी ने प्रेम की सहज, स्वच्छ, पवित्र और अपार्थिवधारा का प्रवाह दिया जो छायावादी काव्य को उनकी विशिष्ट देन कही जा सकती है।

पंत की प्रणय-दृष्टि :

पंत जी प्रेम को सर्व व्यापी मानते हैं :-

` अनिल सा लोक-लोक में
हर्ष में और शोक में
कहां नहीं है प्रेम ?
सांस-सा सबके उर में।`[१]

इस प्रकार वे प्रणय को सृष्टि का संचालक मानते हैं। ` प्रसाद ` जी के प्रणय में मधुचर्या का अतिरेक है तो पंत में बाल-सुलभ सरलता। उच्छवास, आंसू और ग्रन्थिकी सरल बालिका का जिस भोलेपन के साथ चित्रण हुआ है वह देखते ही बनता है। ` उच्छवास ` में एक अनुभवहीन प्रथम विरह-व्यथा विद्ध प्रेमी का चित्रण है, उसमें परिणत युवक की व्यथा का चित्रण नहीं है। उसमें एक कैशोर संकोच है, अतः प्रेम भावना का भी पूर्ण प्रतिस्फुटन नहीं है। पर अपने प्रेम की सरलता पर कवि मुग्ध है। यहां सारा प्रेम व्यापार एक बाल क्रीड़ा ही बना रहा। प्रेमी ने जो ठोस ठेस अनुभव की वह एक प्रकार से प्रिया का बालपना ही था :-

` बालकों का सा मारा हाथ
कर दिये विकल हृदय के तार।`

और प्रेमी बालकों की तरह फूट-फूट कर रोने लगता है :

` बालकों सा ही में तो हाय
याद कर रोता हूं अजान।`

---

१ - छायावादी काव्य : डा० कृष्ण चन्द्र वर्मा : पृष्ठ २६०।

इस प्रणय में जो सरलता, निःश्छलता एवं निष्कलुषता है वह अन्य युगों के प्रणय में कदापि नहीं मिल सकता । प्रेमी को अपनी प्रिया का ध्यान आता है और एक पावनता का स्पर्श सा लगता है :-

`तुम्हारे छूने में था प्राण
संग में पावन गंगा - स्नान
तुम्हारी वाणी में कल्याणि ।
त्रिवेणी की लहरों का गान ।` (पल्लव)

आगे उसने अपनी प्रिया हास में शैशव का संसार और भौहों में आकाश का संदर्शन किया:-

`करुण भौहों में था आकाश
हास में शैशव का संसार,
तुम्हारी आंखों में कर वास
प्रेम ने पाया था आकार । (पल्लव)

पंत जी ने सरलता और भोलेपन की हद कर दी है:-

उषा का था उर में आवास
मुकुल का मुख में मृदुल विकास ।
चांदनी का स्वभाव में वास ।
विचारों में बच्चों की सांस । (पल्लव)

इस तरह पंत ने भोले और किशोर चित्त की प्रणयजन्य उद्विग्नताओं और विक्षिप्त मन स्थितियों की बहुत ही सशक्त व्यंजना कर सके हैं । इस क्षेत्र में वे रीतिकालीन काव्य की मांसलता, अश्लीलता और इन्द्रिय-लोलुपता से मुक्त हैं ।

पंत जी की प्रेम-भावना का विस्तृत वर्णन उनकी ' ग्रन्थि ' में मिलता है। नौका - विध्वंस होने पर किसी तरह बच जाता है। मूर्छा टूटने पर वह देखता है कि :-

' शीश रख मेरा सुकोमल जांघ पर
शशिकला सी एक बाला व्यग्र हो
देखती थी म्लान मुख मेरा अचल
सदय, भीरू, अधीर, चिंतित दृष्टि से।' (रश्मिबंध)

चेतना प्राप्त कर कवि अपनी प्रिया से अनेक प्रश्न पूछता है। वह पूछता है कि यदि तुमने मुझे डूबते से बचा लिया तो इस तरंग में डुबो रही हो :-

' यह अनोखी रीति क्या है प्रेम की
जो अपांगों से अधिक है देखता
दूर होकर और बढ़ता है, तथा
वारि पीकर पूछता है घर सदा।' (रश्मिबंध)

' ग्रन्थि ' के दूसरे-तीसरे - चौथे और खण्डों में प्रणय का निरूपण है। तीसरे खण्ड में प्रेमिका का परिणय दूसरे से हो जाने पर व्यथित हृदय कवि के ये उद्‌गार दृष्टव्य हैं :

' शैवालिनी ! जाओ, मिलो तुम सिंधु से
अनिल ! आलिंगन करो तुम गगन की
चंद्रिके ! चूमों तरंगों के अधर
उडगणों ! जाओ, पवन - वीणा बजा !
पर हृदय सब भांति तू - कंगाल है
उठ, किसी निर्जन विपिन में बैठकर
अश्रुओं की बाढ़ में अपने विकी
मग्न भावी को डुबो दे आंख -सी।' (ग्रन्थि)

पंत जी प्रेम का प्रसार मानव-जीवन में आदि से अन्त तक मानते हैं :-

`यही तो है बचपन का हास, लिखा यौवन का स्वर्ण विलास ।
प्रौढ़ता का वह बुद्धि-विलास, जरा का अन्तर्मथन प्रकाश
जन्म दिन का है यही हुलास, मृत्यु का यही दीर्घ निःश्वास ।` (पल्लव)

प्रेम के अनेक रूप हैं । `परिवर्तन` कविता में उन्होंने बतलाया है कि मानव हृदय में प्रेम कर्म का बाना पहन लेता है और तब वह शिव बन जाता है । प्रेम से कर्तव्य की प्रेरणा मिलती है और वह लोक-मंगल की सृष्टि करता है:-

वही प्रज्ञा का सत्य स्वरूप
हृदय में बनता प्रणय अपार
लोचनों में लावण्य अनूप
लोक-सेवा में शिव अविकार । (पल्लव)

प्रणय को पंत जी हृदय की मुक्ति मानते हैं :-

`देह नहीं है परिधि प्रणय की
प्रणय दिव्य है मुक्ति हृदय की` (स्वर्ण किरण)

पंत जी के अनुसार प्रेम पर ही जन-जीवन निर्भर है:-

`इधर कोमल शब्दों को चुन-चुन में, लिखता जन-जन के मन पर,
मानव आत्मा का खाद्य प्रेम, जिस पर है जग-जीवन निर्भर ।` (सुखवाणी)

`पंत जी की प्रेम - भावना की एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि वह व्यक्तिगत धरातल से उत्तरोत्तर उन्नत होती हुई लोक-प्रेम और लोक मंगल की परमोच्च भूमि पर पहुंच गयी है। प्रेम शरीर का भोगमात्र है । जीवन में उसकी भूमिका उससे कहीं ऊंची हुआ करती है, उसीसे हृदय की मुक्ति हुआ करती है और उसी से आत्मा की भी । प्रेम मानवता का सहज धर्म है। वह इतनी दिव्य वस्तु है कि पंत के लिए तो वह कवि की साधना का चरम गन्तव्य हो गयी है ।`[१]

---

१ - छायावादी काव्य : डा० कृष्णा चन्द्र पंत : पृष्ठ १४६ ।

महादेवी वर्मा की आध्यात्मिक प्रणय दृष्टि :

यों तो प्रसाद, पंत और निराला प्रभृति कवियों ने प्रेम का आध्यात्मिक चित्रण किया है परन्तु इस क्षेत्र में महादेवी वर्मा जी सबसे आगे हैं। उन्हें ऐसा लगता है कि वे कहीं से भूलकर आई हैं :-

" कहीं से आई हूं कुछ भूल
कसक-कसक उठती सुधि किसकी
रुकती-सी क्यों जीवन की गति
क्यों अभाव छाये लेता विस्मृति सरिता के कूल।" (रश्मि, पृष्ठ ४६६)

अतः वे कहती हैं :-

" कौन तुम मेरे हृदय में ?
कौन मेरी कसक में नित मधुरता भरता अलक्षित ?
कौन प्यासे लोचनों में, घुमड़ घिर झरता अपरिचित ?

उन्हें आभास होता है कि यह उनका अज्ञात प्रियतम ही है जो सर्वत्र व्याप्त है। वहीं हमारे अंतरस् में भी विद्यमान है :-

" तुम मुझमें प्रिय परिचय क्या ?"

प्रिय आगमन की सूचना प्रकृति भी देती है :-

" मुरझाता नभ संकेतभरा, अलि, क्या प्रिय आने वाले हैं।
नयन श्रवणमय, श्रवण नयनमय, आज हो रही कैसी उलझन
रोम - रोम में होती री सखि, एक नये उर का स्पंदन
पुलकों में भर फूल बन गए, जितने प्राणों के छाले हैं।" (नीरजा, पृष्ठ ८७)

अतः कवियित्री मिलन रात्रिका आवाहन करती है - ' आ मेरी चिर मिलन-यामिनी ।' प्रियतम से साक्षात्कार होते ही मोह का निर्मम दर्पण टूट गया और रहस्य का पर्दा हट गया, अब कौन साधक और कौन साध्य । अब दोनों एक ही हैं -

' आज कहां मेरा अपनापन, तेरे छिपने का अवगुंठन
मेरा बंधन तेरा साधन
तुम मुझमें अपना सुख देखो, मैं तुममे अपना दुःख प्रियतम
टूट गया वह दर्पण निर्मम । - (नीरजा, पृष्ठ ६६)

अध्यात्म पथ पर बढ़ती हुई कवियित्री कहती है :-

क्या पूजा क्या अर्चन रे
उस असीम का सुन्दर मंदिर, मेरा लघुतम जीवन रे । (नीरजा, पृष्ठ १०७)

इस प्रकार महादेवी जी का प्रेम भी अपार्थिव, अलौकिक और आध्यात्मिक स्तर का है । छायावादी काव्य को प्रणय के क्षेत्र में उन्होंने एक नवीन दिशा दी है ।

निष्कर्ष यह कि यौवन, सौन्दर्य और प्रणय की संश्लिष्ट अनुभूतियों के राग - प्रेरित और वैयक्तिक प्रतीतिजन्य नाना भाव चित्रों से समस्त छायावादी काव्य ही प्रदीप्त हो उठा है । युग - युग से न जाने कितने कवियों ने प्रणय के गीत गाये परन्तु इस युग के कवियों ने जिस विलक्षणता, नवता और भावोन्मेष के साथ प्रणय के चित्र उपस्थित किए वे साहित्य के इतिहास में अमर हो गये हैं । छायावादी प्रणयानुभूतियां नितांत स्थूल अंग वर्णन से संयुक्त नहीं हैं । इस प्रणय में सौन्दर्य की परम्परावेष्टित परिपाटी नहीं है । इस प्रणय में कल्पना संश्लेषण के साथ यथार्थ चित्रण भी है । इस युग के कवियों की दृष्टि प्रणय के सूक्ष्म, अपार्थिव, अलौकिक और परमपावन रूप की ओर भी गयी है । ' छायावाद में रूप और अरूप (चेतना) का संयोजन है । शृंगार काव्य में जबकि जड़ सौन्दर्य है, छायावाद में चैतन्य स्वरूप ।' [१]

---

१ - युग और साहित्य : शान्ति प्रिय द्विवेदी : पृष्ठ २२ ।

४ - छायावादी काव्य में नारी

प्रकृति, सौन्दर्य और प्रेम के अतिरिक्त छायावादी काव्य में नारी भी एक प्रमुख वर्ण्य थी । इस युग में आ कर तो नारी विषयक समस्त धारणाएं ही बदल गयी । जिस प्रकार रीतिकालीन नारी विषयक अवधारणा ' दे मृगनैनी को दे मृग छाला ', ' जोगहू ते कठिन संजोग पर नारी का ' अथवा ' यों दुरि केलि कैर जग में नर धन्य ते हैं धनि है वह नारी ' के विपरीत द्विवेदी युगीन धारणा में घोषित किया गया कि ' पातीं स्त्रियां आदर जहां रहती वहीं सब सिद्धियां ', उसी प्रकार छायावादी युग में भी द्विवेदी विषयक नीरस और उपदेशात्मक अवधारणाओं के विपरीत एक क्रान्ति हुई और उसका एक सूक्ष्म, वासना - रहित, सौन्दर्य मण्डित आदर्श रूप हमारे समक्ष उपस्थित हुआ । इस युग में काव्य के नवीन समापदण्ड और, उसके समूचे दृष्टिकोण में जो परिवर्तन आए उसके कारण भी नारी - भावना स्थूलता का कलेवर छोड़कर सूक्ष्मता और भावुकता से संश्लिष्ट हो उठी । पूर्ववर्ती युग की श्रृंगारी कुण्ठा समाप्त हो गयी और अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव ने इसे और परिष्कृत रूप प्रदान किया ।

छायावादी कवि ने नारी में अपरिमेय शक्ति के दर्शन किए हैं । उसमें राशिभूत आन्तरिक सौन्दर्य के दर्शन किए हैं । उसमें दया, माया, ममता, सहनशीलता, सदाशयता, शीतलता और प्रेरक शक्ति है । छायावादी कवि का विश्वास है कि जगत में शाश्वत सुख और शान्ति, शोभा व वैभव का विस्तार सम्भव है तो नारी के द्वारा ।

छायावादी कवि नारी सौन्दर्य को अमृतमय और चेतनाशक्ति के रूप में देखता है । यहां नारी सौन्दर्य की रीतिकालीन दृष्टि बदल गयी है । उसकी सौन्दर्य भावना अतीन्द्रिय और शिवत्व समन्वित है । वह उसके बाह्य-सौन्दर्य से अधिक उसके आन्तरिक

अन्तस् सौन्दर्य पर मुग्ध है । नारी का वाह्य - सौन्दर्य तो उसके आभ्यन्तर-सौन्दर्य की झलक है :-

क - हृदय की अनुकृति वाह्य उदार
एक लम्बी काया उन्मुक्त । (कामायनी)

ख - तुम चन्द्र बदनि ! तुम कुन्द दशनि
तुम शशि - प्रेयसि, प्रिय परछाईं
उर में अविकच स्वप्नों का युग
मन की छवि तन परछाईं ।
श्री सुषमा की कलि चुन - चुन
जग के हित अंचल भर लाईं । (ज्योत्स्ना : पंत)

इस प्रकार नारी की अभिव्यक्ति मांसल न होकर मनोमय है । छायावादी कवियों ने नारी के बाह्य सौन्दर्य-चित्रण में भी कुछ उठा नहीं रखा है । 'प्रसाद' जी की पंक्तियां उद्धृत की जा रही हैं:-

'आह ! वह मुख ! पश्चिम के व्योम
बीच जब घिरते हों घनश्याम
अरुण रविमंडल उनको भेद
दिखाई देता हो छविधाम ।
- - - - - - - - - - -
और उस मुख पर वह मुस्कान
रक्त किसलय पर ले विश्राम
अरुण की एक किरण अम्लान
अधिक अलसाई हो अभिराम ।' (कामायनी)

पंत जी भी नारी के सौन्दर्य पर मुग्ध हैं :-

एक वीणा की मृदु झंकार
कहाँ है सुन्दरता का पार
तुम्हें किस दर्पण में सुकुमारि
दिखाऊँ मैं साकार । (पल्लव : पंत)

किन्तु छायावादी कवि ने नारी के बाह्य - सौन्दर्य की अपेक्षा आन्तर-सौन्दर्य पर विशेष बल दिया है । प्रसाद जी की यह उक्ति कितनी सुन्दर है :-

' पुरुष क्रूरता है तो स्त्री करुणा है, जो अन्तर्जगत का उच्चतम विकास है, जिसके बल पर समस्त सदाचार ठहरे हुए हैं, इसलिए प्रकृति ने उसे इतना सुन्दर और मन-मोहक आवरण दिया है - रमणी रूप । '१ ' प्रसाद ' जी ने ' कामायनी ' में नारी के अन्त: सौन्दर्य का जो निरूपण किया है वह अत्यन्त दुर्लभ है :-

' तुम अजस्त्र वर्षा सुहाग की
और स्नेह की मधुरजनी,
चिर अतृप्त जीवन यदि था तो
तुम उसमें संतोष बनी - (कामायनी : निर्वेदसर्ग)

लज्जा सर्ग में उन्होंने कहा :-

' नारी तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास रजत नग पग तल में
पीयूष स्त्रोत सी बहा करो, जीवन के सुन्दर समतल में । (कामायनी)

' कामायनी ' में नारी कितनी मंगलमयी है कि वह कहती है कि :-

' औरों को हँसते देखो मनु
हँसो और सुख पावो
अपने सुख को विस्तृत कर लो
सबको सुखी बनाओ - (कामायनी)

१ - अजात शत्रु : पृष्ठ : ~~**~~ ११८, तृतीय अंक)

पंत जी भी नारी में अनिर्वचनीय आन्तर-सौन्दर्य अवलोकन करते हैं:-

` उषा का था उर में आवास
मुकुल का मुख में मृदुल विकास
चांदनी का स्वभाव में वास,
विचारों में बच्चों की सांस (पल्लव)

उन्होंने तो स्पष्ट ही कहा है :-

` तुम्हारा मृदु उर ही सुकुमारि
मुझे है स्वर्गागार । ` (पल्लव)

वे कहते हैं कि ` यदि स्वर्ग कहीं है पृथ्वी पर, तो वह नारी उर के भीतर ` । वे उसे धरा का पुनीत स्वर्ग कहते हैं :-

` विन्दु में थी, तुम सिन्धु अनन्त
एक सुर में समस्त संगीत
एक कलिका में अखिल बसन्त
धरा में थी तुम स्वर्ग पुनीत ` - (पल्लव)

नारी के त्रिविध रूप :- छायावादी काव्य में नारी के तीन रूपों का मुख्यत: चित्रण हुआ है :- प्रेयसी या प्रणायिनी रूप, पत्नी रूप और मातृरूप ।

प्रेयसी या प्रणायिनी रूप - प्रत्येक छायावादी कवि अभाव जीवी होता है । वह अभावों में जीता है, अभावों की उसे कमी नहीं । फलत: वह दु:खी, निराश और पलायनवादी हो जाता है । कभी - कभी वह अपने अभावों, दु:खों से मुक्ति के लिए कल्पना लोक में विचरण करने लगता है । अपने अभावों का अपनयन करने के लिए कभी-कभी वह अपनी कल्पना में नारी-मूर्तियों का भी सृजन करता है । इस प्रकार छायावादी कवियों ने

नारी के प्रेयसी रूप की अवतारणा की जिसके पीछे उनकी कल्पना की तृप्ति प्रेरणा - स्वरूप रही है :-

" हाय किसके उर में उतारूं अपने उर का भार,
किसे अब दूं उपहार गूंथ यह अश्रुकणों का हार । (पल्लव)

प्रेयसी का क्षणिक सहवास कवि के जीवन को माधुर्य, उत्साह और आशा से भर देता है :-

" मैं तो लघु बादल हूं जीवन है क्षण दो चार
प्रेयसि तुम चन्द्रकला-सी आ जाओ मेरे द्वार
उज्वल अधरों से दे दो उज्वल जीवन का सार - (रूपराशि)

पत्नी रूप :- छायावादी कवि ने स्वच्छन्द प्रणय के क्षेत्र में तो नारी का प्रेयसी रूप प्रस्तुत किया परन्तु घर के भीतर गार्हस्थिक क्षेत्र में उसे पत्नी रूप में भी उपस्थित किया । यहां वह वासनाहीन, कर्तव्यपरायणा, त्यागिनी, मार्गदर्शिका, गृहिणी और अर्द्धांगिनी है । पत्नी के रूप में वह हमें कर्म के आदर्शमय मार्ग पर चलने को प्रेरित करती है । वह हमारे जीवन को प्यार, दया, ममता के उदात्त मानवीय गुणों से आप्लावित करती है । उसकी समस्त शुभकामनाएं प्रियतम को समर्पित है । उसके मिलन के क्षणों का ऐन्द्रिक सुख वियोग की घड़ियों में अनमुखी होकर उसके प्राणों में ढल जाता है और विरहजन्य दुख में भी उसे सुख का अनुभव होता है । " कामायनी " में पत्नी रूपा श्रद्धा ही मनु को सन्मार्ग पर चलने का पाठ पढ़ाती है । मनु श्रद्धा से कहते हैं कि :-

" मगवर्षि ! वह पावन मधुधारा
देख अमृत भी ललचाए
वही, रम्य सौन्दर्य शैल से
जिसमें जीवन घुल जाए । " (कामायनी)

श्रद्धा का समागम और संस्पर्श आहत मनु के लिए जीवन बन जाता है । उसकी स्मिति मधुराका, स्वरेणु और गति मरन्द मन्थर मलयज जैसी सुखद प्रतीत होती है :-

" स्मिति मधुराका थी, श्वासों से
पारिजात कानन हिलता
गति मरन्द-मन्थर-मलयज सी
स्वर में रेणु कहां मिलता !
- - - - - - - - - - -
तुमने हंस हंस मुझे सिखाया
विश्व खेल है खेल चलो ।
तुमने मिल कर मुझे बताया
सबसे करते मेल चलो । ✓

अंत में वे कामायनी से कहते हैं कि :-

" तुम अजस्त्र वर्षा सुहाग की
और स्नेह की मधुरजनी
चिर अतृप्त जीवन यदि था तो
तुम उसमें संतोष बनी । (कामायनी ; निर्वेद)

" निराला " के " तुलसीदास " में रत्नावली ही तुलसी को वासना मुक्तकर शांन्ति की ओर ले जाती है । वहीं हमें ज्ञान का पाठ पढ़ाती है एवम् उनमें उत्तम संस्कारों को जगाती है :-

" जागा, जागा, संस्कार प्रबल
रे बाया, काम तत्क्षण वह जल,
देखा, वामा वह न थी, अनल - प्रतिमा वह
इस ओर ज्ञान, उस ओर ज्ञान
हो गया भस्म वह प्रथम भान
छूटा जग का जो रहा ध्यान, जड़िमा वह " (अमरा)

पंत ने भी उसके स्वरूप का उदात्तीकरण करते हुए लिखा :-

` देवि ! मां ! सहचरि ! प्राण !

मातृ रूप :- नारी के पत्नी रूप की चरम परिणति है - उसकी मातृरूप । यह उसके नारीत्व का चरम विकास है । ` कामायनी ` में नारी के मातृरूप का अत्यन्त सुन्दर चित्रण है । अपना घर शिशु से सूना पाकर और नीड़ों में विहंगों का कलख देखकर वह रो पड़ती है :-

` देखो नीड़ों में विहग - युगल, अपने शिशुओं को रहे चूम ।
उनके घर में कोलाहल है, मेरा सूना है गुफा द्वार । ` (कामायनी)

छायावाद परम्परा - विद्रोही है । यहां नारी के मातृ रूपों में भी उसका विद्रोही रूप झलक उठा है । भारतीय काव्यशास्त्र और प्राचीन परम्परा नारी के गर्भिणी रूप के चित्रण की आज्ञा नहीं देते । परन्तु छायावादी काव्य में इसका चित्रण है:-

` केतकी गर्भ सा पीला मुख
आंखों में आलस भरा स्नेह,
कुछ कृशता नयी लजीली थी
कम्पित लतिका - सी लिए देह ।
मातृत्व बोझ से झुके हुए
बंध रहे पयोधर पीन आज,
कोमल काले ऊनों की नव
पट्टिका बनाती रुचिर साज । (कामायनी)

छायावादी कवियों ने नारी के मातृ रूप की बड़ी विशाल और भव्य - कल्पना की है :

१ - मनु ने देखा कितना विचित्र ! वह मातृमूर्ति थी विश्व मित्र । (कामायनी)

२ - तुम देवि ! आह कितनी उदार, यह मातृमूर्ति है निर्विकार
है सर्व मंगले ! तुम सहती, सबका दुःख अपने पर सहती
कल्याणमयी वाणी कहती, तुम कामा निलय में हो रहती । (कामायनी)

३ - जिनके कलादा से करोड़ों शिव विष्णु आज कोटि कोटि
सूर्य चन्द्र तारा ग्रह
कोटि इन्द्र सुरासुर - जड़ चेतन मिले हुए जीव-जग
बनते पलते हैं - नष्ट होते हैं अन्त में -
सारे ब्रह्माण्ड के जो मूल में विराजती हैं
आदि शक्ति रूपिणी
शक्ति से जिनकी शक्ति शालियों में सत्ता है, माता हैं मेरी वे ।

(पंचवटी - प्रसंग : निराला)

नारी का विकृत रूप :- भी छायावादी काव्य में मिलता है । ' कामायनी ' की इड़ा ऐसी ही नारी है जो सिर चढ़ी बन जाती है :-

' सिर चढ़ी रही पाया न हृदय
तू विकल कर रही है अभिनय ।

वह अपने दोषों को श्रद्धा से स्वीकार करती हुई कहती है कि :-

' मैं आज अकिंचन पाती हूं, अपने को नहीं।सुहाती हूं
मैं जो कुछ भी स्वर गाती हूं, वह स्वयं नहीं सुन पाती हूं
दो कामा, न दो अपना विराग, सोई चेतना उठे जाग । ' (कामायनी दर्शन)

' कामायनी ' में ही प्रसाद जी ने स्पष्ट घोषणा की है कि :-

' नारी का वह हृदय ! में सुधा - सिन्धु लहरें लेता
वाड़व ज्वलन उसी में जलकर, कंचन सा जल रंग देता
मधु पिंगल उस तरल अग्नि में, शीतलता संसृति स्वरी
क्षमा और प्रतिशोध ! वाह दोनों की माया बनती । ' (कामा० : निर्वेद)

इसके अतिरिक्त कुछ छायावादी कवियों - राम कुमार वर्मा, माखन लाल चतुर्वेदी, आरसी प्रसाद सिंह ने राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत नारियों का भी चित्रण किया है । ' अनामिका ' में निराला जी ने नारी को ' पत्थर कोकारा ' तोड़ने का आवाहन किया है और उसके क्रान्तिकारी रूप की कल्पना की है ।

निष्कर्ष :

छायावादी काव्य की नारी विषयक उपर्युक्त समीक्षा से हम इसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि छायावादी नारी की सर्वथा नवीन भाव भूमि पर प्रतिष्ठा हुई है । वहह दिव्य, ज्योतिष्मती, प्रेरणामयी, मंगलमयी और पुरुष-जीवन-सर्वस्व है । उसका महत्व उसके वाह्य सौन्दर्य में नहीं अपितु आन्तर सौन्दर्य में है । वह सुन्दर है- बाहर और भीतर भी । हिन्दी काव्य में नारी को सर्वांगपूर्णता यदि कहीं मिली है तो छायावादी काव्य में । यही वह काव्य है जो श्रद्धा जैसा अमर नारियों के प्रस्तुतीकरण द्वारा कालिदास की शकुन्तला और शेक्सपीयर की मिरेण्डा और पोर्शिया की तुलना कर सका है । वस्तुतह छायावादी काव्य में नारी के समस्त रूपों-प्रेयसी, पत्नी और माता के साथ ही समस्त सौन्दर्यमण्डित गुणों की परम निदर्शना हुई है:-

' स्वप्नमयि ! हे मायामयि
तुम्हीं हो स्पृहा, अश्रु और हास
सृष्टि के उर की सांस,
तुम्हीं इच्छाओं की अवसान,
तुम्हीं स्वर्गिक आभास
तुम्हारी सेवा में अनजान
हृदय है मेरा अन्तर्धान,
देवि ! मां ! सहचरि ! प्राण ! (पल्लव)

५ - छायावादी काव्य के अन्य विषय

(क) छायावादी काव्य वस्तु में विद्रोहात्मकता के स्वर अत्यन्त मुखर हैं। पाश्चात्य रोमान्टिक कविता भी विद्रोही है। जहां वर्ड्सवर्थ, शेली, बायरन और कीट्स प्रकृति कवियों ने अपने पिछले युग की शास्त्रीयता के विरुद्ध विरोध किया, वहीं छायावादी कवि भी पूर्ववर्ती रीतिकालीन शास्त्रीयता, स्थूलता और कृत्रिमता के विपरीत विरोध किया। जिसप्रकार वर्ड्सवर्थ ने लिरिकल बेलड और शेली ने ओड टू वेस्ट विन्ड में विद्रोह का स्वर मुखरित किया उसी प्रकार निराला, पंत प्रकृति कवियों ने भी। विद्रोह व विध्वंस की अनुगूंजें, रूढ़ि-विनाश की आकांक्षा निराला और पंत दोनों में है। निराला की निम्नांकित पंक्तियां अवलोकन करें:-

` तोड़ो - तोड़ो कारा
पत्थर की, निकले फिर
गंगाजल धारा।` (अनामिका: मुक्ति : पृष्ठ १३७)

अपनी ` बादल राग ` नाम्नी कविता में वे बादल से अनुरोध करते हैं कि गरज-गरज कर ऐसी वर्षा करे कि प्राचीनता विनष्ट हो जाय और नूतनता का आगमन हो :-

` गरज - गरज घन अंधकार में गा अपने संगीत
बंधु, बे-बाधा-बन्ध-विहीन
आंखों में नवजीवन की तू अंजन लगा पुनीत
बिखर झर जाने दे प्राचीन।
- - - - - - - - - - -
संचित कर नूतन अनुराग
जीर्ण-शीर्ण जो, दीर्घ धरा में प्राप्त करे अवसान
रहे अवशिष्ट सत्य जो स्पष्ट - (अनामिका : पृष्ठ ६७)

पंत जी भी विद्रोह के स्वर में कहते हैं:-

> ' द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र
> हे स्रस्त ध्वस्त, हे शुष्क शीर्ण
> हिम पात पीत, मधुवात - भीत
> तुम वीतराग, जड़, पुराचीन
> - - - - - - - - - - - -
> निष्प्राण विगतयुग, मृत विहंग
> झर झर अनन्त में हो विलीन ' (युगपथ : पृष्ठ ११)

परन्तु नाश की यह कामना अपरोक्ष रूप से नव निर्माण की भूमि प्रस्तुत करती है। छायावादी कवि ने प्राचीन वर्ण्य विषयों; भाषा, छन्द, अलंकारादि सभी के विरुद्ध अपनी आवाज उठायी और नवीन विषय, नवीन मसृण पद-बन्ध-समन्वित भाषा और भाव क्रान्ति आदि का काव्य-जगत में समावेश किया। इस प्रकार छायावादी काव्य का विद्रोही स्वर जहां एक ओर निषेधात्मक था वहीं दूसरी ओर विधेयात्मक भी। वे संहारक और संरक्षक दोनों बन गए। शेली ने भी अपनी ' ओड टू दी वेस्ट विंड ' में ऐसा ही कहता है।[१]

(ब) छायावादी काव्य में मानवतावाद का भी स्वर अत्यन्त प्रखर है। छायावाद में नवीन मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा हुई। जिस प्रकार अंग्रेजी कवि वर्ड्सवर्थ ने प्रकृति के माध्यम से मानव - जीवन की व्याख्या उपस्थित की, उसने प्रकृति की स्वच्छंदता को मानव में चाहा और मानव को अपने काव्य का विषय बनाया, वैसी ही छायावादी कवियों ने भी मानव को अपने काव्य का विषय बनाया। पंत जी ने स्पष्ट घोषणा की:

> ' सुन्दर हे सुमन, विहग सुन्दर
> मानव तू सबसे सुन्दरतम्। ' (गुंजन)

---

१ - Destroyer and preserver, O hear, Oh hear
Shelley : Ode to the West wind.

निराला ने भी कहा - `सबमें है धन्य श्रेष्ठ मानव।`

श्री जयशंकर प्रसाद ने तो `कामायनी` में मानवता की उच्च प्रतिष्ठा की है :-

`मानव की शीतल छाया में
ऋण शोध करूंगा निज कृतिका।` (कामायनी: काम)

`कामायनी` में बार-बार इसी का उद्घोष किया गया है :-

(१) `आज से मानवता की कीर्ति
अनिल, भू, जल में रहे न बंद` (कामायनी: श्रद्धा)

(२) `समन्वय उनका करे समस्त
विजयिनी मानवता बन जाय।` (कामायनी: श्रद्धा)

(३) इस देव द्वन्द्व का यह प्रतीक
मानव कर ले सब भूल ठीक।` (कामायनी: दर्शन)

(४) तब देखूं कैसी चली रीति
मानव! तेरी हो सुयश गीति। (कामायनी : दर्शन)

इस प्रकार जहां `कामायनी` में मनु-श्रद्धा के रूपक द्वारा मानवता के विकास का बड़ा ही भावमय और श्लाघ्य चित्रण किया है, वहीं अन्य कवियों ने साधारण मानवों के चित्रण द्वारा भी अपने अभिनव मानवतावाद का परिचय दिया है। पंत जी ने पासी के नंगे, मटमैले बच्चों का चित्रण किया, निराला ने भिक्षुक, विधवा, पत्थर तोड़ने वाली का जो चित्रण किया है वह उनके मानवतावादी दृष्टिकोण का ही परिचायक है। महादेवी जी ने गीत -

`कह दे मां अब क्या देखूं
देखूं खिलती कलियां या प्यासे सूखे अधरों को
तेरी चिर यौवन सुषमा या जर्जर जीवन देखूं।`

द्वारा भी दीन-हीन मानवता के ही गीत गाए । सिद्ध है कि छायावाद कल्पनालोक की अवास्तविक कविता नहीं है और न तो वह जीवन से पलायन है । वह तो अनुभूति और कल्पना सम्पृक्त एक यथार्थवादी जीवन दृष्टि है जो जीवन से पलायन नहीं अपितु उसके कटु-मधु अनुभवों में अवगाहन और स्वीकरण का आमंत्रण देती है ।

(ग) छायावादी काव्य में राष्ट्रीयता के तत्व भी विद्यमान है । ' निराला ' ने ' जागो फिर एक बार ' में राष्ट्रीयता भरे शब्दों में कहा है :-

' जागो फिर एक बार
प्यारे जगाते हुए हारे सब तुम्हें
अरुण - पंख तरुण - किरण
खड़ी बोल रही द्वार
जागो फिर एक बार । (अपरा : पृष्ठ १६)

उन्होंने विदेशियों को शृगाल कहा है :

' शेरों की मांद में
आया है आज स्यार
जागो फिर एक बार (अपरा : पृष्ठ १६)

कविवर पंत को भी राष्ट्र का स्वर्णिम अतीत स्मरण हो आता है -

' कहां आज वह पूर्ण पुरातन, वह सुवर्ण का काल ?
भूतियों का दिगन्त छविजाल । (पल्लव : परिवर्तन)

श्री जयशंकर प्रसाद ने ' स्कन्द गुप्त ' में यह प्रसिद्ध गीत लिख दिया है :-

' हिमालय के प्राङ्गण में प्रथम उसे दे किरणों का उपहार
उषा ने हंस अभिनन्दन किया, और पहनाया हीरक हार । '

कुछ आलोचकों ने छायावादी काव्य पर यह आरोप लगाया है कि जब देश में स्वातंत्र्य के लिए उथल-पुथल हो रहा था तो ये कल्पना जीवी छायावादी कवि स्वप्न - लोक में विचरण कर रहे थे। उन्होंने राष्ट्र और राष्ट्रीयता के स्वर में कुछ भी नहीं कहा। परन्तु इस आक्षेप का समाधान यहां उपर्युक्त बातों से हो जाता है।

निष्कर्ष :

कुल मिलाकर, छायावादी काव्य वस्तु में प्रकृति-प्रेम, सौन्दर्य, प्रेम व्यंजना, नारी की नवीन प्रतिष्ठा, राष्ट्रीयता, विद्रोहात्मकता, वैयक्तिकता, भावात्मकता और मानवतावाद ही प्रमुख हैं। इन सभी विषयों पर छायावादी वैयक्तिकता और अन्तर्मुखीनता का प्रभाव है। यही कारण है कि इन कवियों ने काव्य वस्तु को नवीन दृष्टि से देखा है।

ङ. छायावादी मूल्यदृष्टि

द्विवेदी - युगीन काव्य दृष्टि के सन्दर्भ में विवेचन हो चुका है कि उस युग में मूल्यों में परिवर्तन आ रहा था। श्री मैथिलीशरण गुप्त और अयोध्या सिंह उपाध्याय की कविताओं में मूल्यों में स्पष्ट परिवर्तन परिलक्षित हो रहे थे। इस युग के अवसान के बाद जब छायावाद का आगमन हुआ तो मूल्यों में क्रान्तिकारी परिवर्तन दृष्टिगोचन होते हैं। छायावादी काव्य व्यक्तिनिष्ठ होकर मूल्यनिष्ठ रहा है। उसमें व्यक्ति मूल्य का प्रतिनिधि रहा है और जैसे-जैसे मूल्य के प्रति दृष्टिकोण का विकास होता रहा उसका व्यक्तित्व भी विकसित होकर युग के सम्मुख एक अधिक व्यापक, आदर्शोन्मुखी तथा यथार्थ आधृत जीवन-दृष्टि उपस्थित करने की चेष्टा करता रहा। छायावादी आदर्श विगत युगों की एक देशीय उदात्तता को अतिक्रम कर विश्वमुखी औदात्य से अनुप्राणित रहा है।[१] जहां इन छायावादी मूल्यों की पृष्ठभूमि में एक ओर भारतीय दर्शन के आध्यात्मिक मूल्य हैं वहीं दूसरी ओर नवयुग की प्रबल प्रेरणा भी। निःसंदेश इन मूल्यों के मूल में पाश्चात्य पेन्थाज्म और मानवतावादी आदर्शों का भी हाथ रहा है। इन कवियों ने भारतीय और पाश्चात्य दोनों आदर्शों को ग्रहण किया है। इस युग की सामाजिक, धार्मिक, नैतिक, आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियां ऐसी थी जिनके विभिन्न प्रभावों की उपेक्षा नहीं की जा सकती थी। महर्षि अरविन्द ने इस युग में वैदिक मूल्यों की नवीन व्याख्या की और इसे ग्रहण किया। छायावादी कवियों ने। इसी प्रकार विवेकानन्द के वेदान्तदर्शन, दयानन्द जी द्वारा वैदिक संस्कृति की पुनर्स्थापना, मार्क्स की साम्यवादी विचारधारा और गांधी के सत्य और अहिंसा के प्रयोग सभी ने मिलकर मूल्यों में महान परिवर्तन किया। छायावादी काव्य में मूल्यगत परिवर्तन के

---

१ - छायावाद : पुनर्मूल्यांकन : पंत : पृष्ठ १०२।

के निम्नांकित क्षेत्र दृष्टिगोचर होते हैं :-

(१) मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा या नवमानवतावाद
(२) विश्ववाद
(३) मनोवैज्ञानिक मूल्यगत दृष्टि और
(४) ऐतिहासिक व सांस्कृतिक मूल्यदृष्टि ।

(१) मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा या नवमानवतावाद :

पूर्व विवेचित है कि छायावादी काव्य व्यक्तिनिष्ठ रहा है । इस काव्य का मूल व्यक्ति है जिसके आभ्यन्तर का निरूपण ही इसका वर्ण्य रहा है । इस व्यक्ति-निष्ठता के कारण काव्य में अभिनव मानव मूल्यों की स्थापना हुई । व्यक्तिवाद से प्रारम्भ होकर यह काव्य समष्टिवाद तक पहुंचता है । इसीलिए कतिपय आलोचकों ने इसे लोकनिष्ठ काव्य भी कहा है । सच तो यह है कि यहां व्यष्टि की परिधि इतनी विस्तृत हो जाती है कि वह समष्टि बन जाती है । व्यक्तिगत अनुभूतियां लोक-अनुभूतियां बन जाती हैं । इसमें योग दिया है भारतीय सर्वात्मवादी दर्शन और पाश्चात्य पैन्थेइज्म ने । भारतीय सर्वात्मवाद के अनुसार सृष्टि का प्रत्येक अंश उस परमात्मा की ही अभिव्यक्ति है । पाश्चात्य पैन्थेइज्म भी यही प्रतिपादित करता है । परमात्मा एक समग्रता है जो अपने को नाना रूपों में व्यक्त करता है । पाश्चात्य पैंथेइज्म के अनुसार संसार माया नहीं सत्य है । ' प्रसाद ' जी भी कहते हैं :-

' तप नहीं केवल जीवन सत्य ' ये दोनों दर्शन एक नवीन मानवतावाद को जन्म देते हैं व्यक्ति - व्यक्ति के बीच कोई भेद नहीं है । सभी उसी विश्वात्मा के अंग हैं :-

हम अन्य न और कुटुम्बी
केवल हम एक हमीं हैं ।
तुम सब मेरे अवयव हो,
जिसमें कुछ नहीं कमी है । (कामायनी)

समस्त मानव-मात्र एक हैं । स्थूल या सूक्ष्म, दृश्य या अदृश्य, जड़ या चेतन सभी में एक ही तत्व रम रहा है :-

` एक तत्व की ही प्रधानता
कहो उसे जड़ या चेतन । ` (कामायनी)

` कामायनी ` में मनु और श्रद्धा की कथा को मानव-मूल्यों के विकास का प्रतीक माना गया है । प्रसाद ने अभिनव मानवता के विकास के लिए श्रद्धा (हृदय) और बुद्धि दोनों के समन्वय पर बल दिया है । किसी एक के अभाव में जीवन अपूर्ण है । मानवता के विकास के लिए विज्ञान और धर्म दोनों ही आवश्यक हैं । इसीलिए श्रद्धा के अंक में पला और इड़ा की देख-रेख में रहता हुआ मनु-पुत्र मानव हमारी मानवता के लिए एक आदर्श बन जाता है । ` कामायनी ` में इसी अभिनव मानव की प्रतिष्ठा है ।

पंत जी ने तो ` युगान्त ` के साथ ही एकयुग की परिसमाप्ति की घोषणा की और ` युग वाणी ` में सामूहिकता को निजत्व माना :-

` सर्वमुक्ति हो मुक्ति तत्व अब
सामूहिकता ही निजत्व अब । `

कवि ने लोक-जीवन के सुख-दुख को अपना सुख-दुख माना । कवि को बोध होता है कि पुराकाल से अद्यावधि मनुष्य की विषमता के मूल में अर्थनीति रही है । सम्पूर्ण मानवता के सुख के लिए इस अर्थनीति में परिवर्तन आवश्यक है । मार्क्स और एंजिल्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी विचार उसे आकृष्ट करते हैं । वह मानव को अपने चिन्तन का केन्द्र मानता है और बनाता है । मानव देह मात्र ही नहीं, वरन् उससे परे भी वह है । इस देह से परे वाले मानव तत्व के प्रति मार्क्स मौन है । अतः मार्क्सवाद का ` देह-दर्शन ` उसे रिझाता है और सोचने के लिए बाध्य करता है । इस दर्शन के अभाव की पूर्ति गांधीवाद में मिलती है । मार्क्स मानव को स्वभावतः स्वार्थी मानते हैं, परन्तु गांधी उसे पवित्र

मानते हैं । परिस्थितियां उसे स्वार्थी और अपवित्र बनाती हैं । अतः उसे प्यार से सुधारना आवश्यक है :-

" आज असुन्दर लगते सुन्दर, प्रिय शोषित जन,
जीवन के दैन्यों से जर्जर मानव - मन हरता मन ।"

पीड़ित मनुष्य के दर्द को सहानुभूति चाहिए और अन्याय के प्रतिकार के लिए सद्बुद्धि और अहिंसा । ज्वाला से ज्वाला और हिंसा से हिंसा कदापि नहीं बुझती । हिंसा जर्जर जगत को प्रेम और सौहार्द्र की शीतलता चाहिए । विश्व में चारो ओर अन्याय देखकर कवि रुद्र-घोष कर उठता है :-

" गा कोकिल बरसा पावक कण
नष्ट - भ्रष्ट हो जीर्ण - पुरातन
पावक पग धर आवे नूतन
हो पल्लवित नवल मानवधन "

इस विनाश के बाद वे " नवल मानवपन " निर्माण के लिए विविध वादों में व्याप्त सत्य की खोज करते हैं । चिन्तन प्रधान भारतीय दर्शन, कर्मप्रधान मार्क्सवाद और कर्मचिन्तन के समन्वय का प्रतीक गांधीवाद पंत के काव्य में अधिक व्यक्त होता रहा -

भूतवाद उस स्वर्ग के लिए है केवल सोपान
जहां आत्म दर्शन अनादि से समासीन अम्लान ।

अथवा

मनुष्यत्व का तत्व सिखाता
निश्चय हमको गांधीवाद
सामूहिक जीवन - विकास की
साम्य योजना है अविवाद ।

पंत जी के अनुसार, मानव आत्मा का विकास अरविन्द के आत्म दर्शन के बिना संभव नहीं। अपने उत्तरवर्ती काव्य में उन्होंने अरविन्द - दर्शन को स्वीकार किया है :

" आत्मा वाद पर हंसते हो, रट मोतिक्ता का नाम,
मानवता की मूर्ति गढ़ोगे, तुम संवार कर चाम। "

इस प्रकार पंत जी ने समग्र मानवता के विकास की चिन्तना की है। पंतजी ने हिन्दू-मुस्लिम एकता एवं नारी की महता का भी प्रतिपादन करते हैं जिनके अभाव में मानव -मूल्यों के समस्त दर्शन बेकार हैं।

निराला जी तो मानवता के कवि ही हैं। उन्होंने भिक्षुक, विधवा एवं तोड़ती पत्थर जैसी कविताओं में मानवता के प्रति स्पंदन दिखाते हैं। उनका मानवतावाद लोक-विस्तृत है। इस मानवतावादी कल्पना में विस्तार के लिए उन्होंने भारतीय आध्यात्मवाद का सहारा लिया है। मानव महता का प्रतिपादन करते हुए वे कहते हैं कि :-

" तुम हो महान्
तुम सदा हो महान
है नश्वर यह दीन भाव
कायरता, पामरता
ब्रह्म हो तुम
पद रज भर भी है नहीं
पूरा यह विश्व भार
जागो फिर एक बार। " (अपरा)

महादेवी के काव्य में भी मानवतावादी दृष्टि का परिचय मिलता है। उनकी " कह दे मां देखूं " कविता में दीन - हीन मानवता के प्रति संवेदना है। महदेवी जी कहती है कि : " परन्तु उसने अपने क्षितिज से क्षितिज तक विस्तृत सूक्ष्म की सुन्दर और सजीव चित्रशाला

में हमारी दृष्टियों को दौड़ा-दौड़ाकर ही उसे विकृत जीवन की यथार्थता तक उतरने का पथ दिखाया । इसी से छायावाद के सौन्दर्य-द्रष्टा की दृष्टि कुत्सित यथार्थ तक भी पहुंच सकी । "[१] इस प्रकार समस्त छायावादी काव्य में अभिनव मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा है ।

छायावादी कवियों का यह मानवतावाद केवल मानव तक ही सीमित नहीं है, वरन् उसका प्रसार समस्त प्राणिजगत में भी है । इसीलिए इनकी दृष्टि पशु-पक्षी प्रेम तक भी पहुंची है । पंतजी विहंग-बालिका से पूछते हैं :-

"विजन वन में तुमने सुकुमारि
कहां पाया यह मेरा गान ।"

चींटी को देखकर वह कहते हैं :-

"चींटी को देखा ?
वह सरल विरल काली रेखा ।"

"प्रसाद" जी ने इसे लघुता के प्रति दृष्टिपात कहकर संबोधित किया है ।

पंत जी ने तो आत्मा है सरिता के भी" और "शाश्वत नभ का नीला विकास, शाश्वत शशि का यह रजत - हास" कहकर जड़-पदार्थों में भी चेतनता का प्रसार कर मानवतावाद का विस्तार ही किया ।

मानवतावाद प्राणिमात्र को समान समझता है और इसी सिद्धान्त की स्वीकृति के बाद मानव कष्ट निवारणार्थ उद्यत होना हमारा परम कर्तव्य है । उसमें त्याग, सेवा, दया, उदारता, सद्भाव, सहिष्णुता आदि गुणों की स्थिति आवश्यक है । भारतीय

---

१ - आधुनिक कवि -१, पृष्ठ २० ।

मानवतावाद में करुणा है पर पाश्चात्य मानवतावाद में ऐसा नहीं है। उनके आलोचकों को छायावादी काव्य की आध्यात्मिकता पर सन्देह है। परन्तु भावनात्मक और वैचारिक धरातल पर यह नहीं होना चाहिए।

निष्कर्षतः छायावादी काव्य के मानवतावादी धरातल की पृष्ठभूमि में भारतीय आध्यात्मिक जीवन मूल्यों, नवयुगों की चेतना की प्रबल-प्रेरणा, पाश्चात्य पेन्थेइज्म, और मानवतावादी आदर्शों का परिणाम है। एक वाक्य में, छायावादी व्यष्टि का मूल ही विकसित और पल्लवित होकर समष्टि के धरातल पर नवमानवतावाद के रूप में हमारे समक्ष आता है।

(२) विश्ववाद :

छायावादी काव्य का मानवतावाद आगे चलकर विश्ववाद के रूप में परिणत हो जाता है। 'कामायनी' में इस विश्ववाद की एक सुन्दर एवं सुव्यवस्थित झलक मिलती है। विश्व की समस्त पीड़ाओं के मूल में है - विषमता। 'प्रसाद' जी कामायनी में लिखते हैं :-

'विषमता की पीड़ा से व्यस्त
हो रहा स्पन्दित विश्व महान्।' (कामायनी : श्रद्धा)

इस विषमता ने विश्व में दुःख का जनन किया, इसी के कारण द्वैत का आविर्भाव हुआ, और जहां द्वैत की भावना है वहां संघर्ष और परिणामतः दुःख है :-

यह अभिनव मानव प्रजा सृष्टि
क्षयता में लगी निरन्तर हो वर्णों की करती रहे वृष्टि।
अनजान समस्याएं गढ़ती रचती हो अपनी ही विनष्टि
कोलाहल कलह अनन्त चले, एकता नष्ट हो बढ़े भेद
अभिलषित वस्तु तो दूर रहे, हां मिले अनिच्छित दुखद खेद।
(कामायनी:इड़ा)

अतः कामायनी ने द्वयता अथवा द्वैत की आलोचना की :-

` यह द्वैत, अरे यह द्विविधा तो
है प्रेम बांटने का प्रकार ` (कामायनी : ईर्ष्या)

` प्रसाद ` ने द्वयता को विस्मृति कहा - ` द्वयता ही तो विस्मृति है । ` इसीलिए ` प्रसाद ` जी ने कामायनी में समस्त भेद-भावों को भूलकर सुख-दुख को समान समझने का उपदेश दिया है, ताकि यह विश्व नीड़ जैसा सुखद बन जाय :-

` सब भेद भाव भुलवाकर,
सुख - दुःख को दृश्य बनाता
कह रे ! मानव ` यह मैं हूं `
यह विश्व नीड़ बन जाता । - (कामायनी : आनंद सर्ग)

विश्व को एक कुटुम्ब की भांति मानकर प्रेम के साथ रहने की बात ` प्रसाद ` करते हैं:-

` हम अन्य न और कुटुम्बी
केवल हम एक हमीं हैं
तुम सब मेरे अवयव हो
जिसमें कुछ नहीं कमी है । ` (कामायनी आनन्द सर्ग)

विश्व की सेवा या सबकी सेवा किसी दूसरे की सेवा नहीं अपितु अपनी ही सेवा है और इसी भावना के विस्तार से विश्व में शाश्वत सुख और शान्ति की सृष्टि हो सकती है, द्वयता से नहीं :-

` सबकी सेवा न परायी
वह अपनी सुख संसृति है
अपना ही अणु-अणु कण - कण
द्वयता ही तो विस्मृति है । (कामायनी आनन्द सर्ग)

इस प्रकार `कामायनी` में एक व्यापक विश्ववाद की कल्पना की गयी है और उसे सौरभ से भर देने की भी महती योजना है :-

`बनो संसृति के मूल रहस्य
तुम्हीं से फैलेगी यह बेल
विश्व भर सौरभ से भर जाय
सुमन के खेलो सुन्दर खेल।` (कामायनी : श्रद्धा)

(३) मनोवैज्ञानिक मूल्यदृष्टि :

छायावाद ने व्यक्तिवादी होने के कारण व्यक्ति के अन्तर्जगत के अवगुंठनों, भावों और संवेदनों को खूब समझा। मानव - मन की सूक्ष्म वृत्तियों का जैसा मूर्त, स्पष्ट और सुन्दर चित्रण छायावादी काव्य में मिलता है वैसा अन्यत्र कहीं नहीं। मानव मन की सूक्ष्म अन्तर्वृत्तियों के निरूपण में यह युग अपना सानी नहीं रखता। हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग भक्ति काल भी मानव - मन की सूक्ष्मातिसूक्ष्म कोमल - परुष - जटिल अन्तर्वृत्तियों के सफल चित्रण में इस युग से बहुत पीछे छूट जाता है। `प्रसाद` जी सूक्ष्म अन्तर्वृत्तियों के चतुर चितेरे कहे गए हैं। उन्होंने तो स्पष्ट घोषणा की है कि :-

`चेतना का सुन्दर इतिहास
अखिल मानव भावों का सत्य
विश्व के हृदय - पटल पर दिव्य
अक्षरों में अंकित हो नित्य।` (कामायनी : श्रद्धा)

वास्तव में `कामायनी` में चेतना का सुन्दर इतिहास` ही प्रस्तुत करके मनोवैज्ञानिक मूल्यों की जो अवतारणा की है वह अद्भुत व अपूर्व है। `कामायनी` के मनु, श्रद्धा और इड़ा क्रमशः मन, हृदय और बुद्धि के प्रतीक हैं। इस दृष्टि से निरूपण करने पर कृति अंतःकरण में वृत्तियों के विकास की गाथा छिपाये हुए है।

कामायनीकार ने मन की सूक्ष्म अन्तर्वृत्तियों - चिन्ता, आशा, श्रद्धा, इड़ा, ईर्ष्या, लज्जादि का जो चित्रण है वह मानव मनोवैज्ञानिक मूल्यों के इतिहास में, कभी भी धूमिल नहीं हो सकता । उदाहरणार्थ हम मानव की ' लज्जा ' वृत्ति को ले सकते हैं :-

चंचल किशोर सुन्दरता की
मैं करती रहती रखवाली
मैं वह हल्की सी मिसलन हूं
जो बनती कानों में लाली । (कामायनी)

यहां लज्जा को किशोर सुन्दरता की रक्षिका बतलाया गया है और उसके स्वरूप का चित्रण करते हुए कवि ने बतलाया कि उसका रंग वैसे ही होता है जैसे किसी के कानों को हल्का मसल दिया जाय तो वे ईषत् लाल हो जाते हैं, वैसी लज्जा होती है । कितना सुन्दर चित्रण है लज्जा-मनोवृत्ति का ! इतना ही नहीं, इसी चित्रण को आगे बढ़ाते हुए वे कहते हैं कि :

' लाली बन सरस कपोलों में,
आंखों में अंजन सी लगती
कुंचित अलकों सी घुंघराली
मन की मरोर बनकर जगती । ' (कामायनी)

यहां लज्जा कपोलों में लाली बनकर आती है । यह आंखों में अंजन सी प्रतीत होती है और कुंचित अलकों सी मन की मरोर है अर्थात् लज्जा किशोरियों के मन की मरोर (ऐंठन) है जो उन्हें बुरे मार्ग पर जाने से बचाती है ।

' चिन्ता ' का कितना सुंदर निरूपण यहां है :-

' हे अभाव की चपल बालिके,
री ललाट की खल लेखा !
हरी - भरी सी दौड़ धूप, ओ
जल माया की चल रेखा । (कामायनी)

इसी प्रकार मानव-मन की अनेक अन्तर्वृत्तियों का बहुत ही सुन्दर निरूपण छायावादी काव्य में हुआ है। छायावादी काव्य में यदि व्यक्ति की अन्तर्मुखिनता की सच्ची अभिव्यक्ति है तो वह सचमुच इन्हीं सूक्ष्म वृत्तियों के निरूपण में। इस क्षेत्र में यह काव्य अद्वितीय है।

(४) सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्य-दृष्टि :

आधुनिक युग में साहित्य के प्रमुख आलोचक टी० एस० इलियट ने काव्य में मन के आवेगों के स्थान पर जाति और समाज के सांस्कृतिक उत्तराधिकार को अधिक महत्व दिया है। `कविता में कवि का व्यक्तित्व नहीं प्रकाशित होता है, वरन् वह केवल माध्यम का काम करता है। परम्परा का स्थान काव्य रचना में प्रमुख है और कवि की प्रतिभा केवल मध्यस्थ के रूप में उसी को काव्य में प्रतिफलित होने में सहायता प्रदान करती है। कविता में व्यक्तित्व का प्रकाशन नहीं होता, वरन् निर्वैयक्तीकरण की प्रक्रिया सम्पन्न होती है। यदि कोई अपनी ही संवेदनाओं अथवा अनुभूतियों में उलझ कर उन्हीं को व्यक्त करने का प्रयास करता है तो उसकी रचनाएं नगण्य और अल्पमूल्य की होंगी। - - - -अतएव कविता वैयक्तिक भावनाओं का प्रकाशन नहीं, वरन् ऐसी भावनाओं से पलायन है। - - - - आन्तरिक क्रियाओं और चेष्टाओं के स्थान पर इलियट ने परम्परा को महत्व दिया है, जिसमें इतिहास और संस्कृति के मौलिक तत्व अपने अभिनव रूप में निरंतर सन्निविष्ट होते रहते हैं।'[१] इलियट के ये विचार उसके निबंध `परम्परा और व्यक्तिगत वैशिष्ट्य` में दिये हुए हैं। छायावादी काव्य में भी इतिहास, समाज और संस्कृति का पुनर्मूल्यांकन हुआ है। `प्रसाद` जी ने अपने काव्यों और नाटकों में इतिहास का पुनर्मूल्यांकन किया है। `प्रलय की छाया`

---

१ - साहित्य - सिद्धान्त : डा० राम अवध द्विवेदी : पृष्ठ १६५।

में इतिहास का पुनर्मूल्यांकन अवलोकन करें :-

`पावन सरोवर में अवभृथ स्नान था
आत्म-सम्मान-यज्ञ की वह पूर्णाहुति
सुना - जिस दिन पद्मिनी का जल मरना
सती के पवित्र आत्म गौरव की पुण्य गाथा
गूंज उठी भारत के कोने-कोने जिस दिन
उन्नत हुआ था भाल
महिला महत्व का।` (लहर)

`कामायनी` में तो प्राचीन इतिहास का नवीनता के पर्यप्रेक्ष्य में अभिनव-मूल्यांकन किया गया है। उसका समस्त पट ऐतिहासिक है। `निराला` जी काव्य में शिवाजी का पत्र `एक ऐसी कविता है जिसमें इतिहास को नया मूल्य प्रदान किया गया है। अवलोकन करें शिवाजी के पत्र के व्याज से कवि ने परतंत्रता की बेड़ियों को तोड़कर सम्राज्यवाद को उखाड़ फेंकने का कैसा मंत्र फूंका है और क्रांति का नवीनीकरण कर दिया है :-

`जितनें विचार आज
मारते तरंग हैं
साम्राज्यवादियों की भोज वासनाओं में
नष्ट होंगें चिरकाल के लिए।
आयेगी भाल पर भारत की गई-ज्योति,
हिन्दुस्तान मुक्त होगा घोर अपमान से
दासता के पाश कट जायेंगें। (अपरा)

इतिहास के अतिरिक्त यहां सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों में भयंकर परिवर्तन हुआ।

रीतिकालीन इतिहास केवल आभिजात्य वर्ग तक ही सीमित था, परन्तु छायावाद ने अपनी दृष्टि समाज के क्षत-विक्षत निम्न वर्गीय लोगों पर भी डाली। 'निराला' जी 'दान' कविता में उन धार्मिक व्यक्तियों का व्यंग्यपूर्ण चित्रण करते हैं जो बन्दरों को तो खिलाते हैं, परन्तु भिखमंगों को पास नहीं आने देते :-

'मेरे पड़ोस के वे सज्जन
करते प्रतिदिन सरिता मज्जन
झोली से पुए निकाल लिये
बढ़ते काँपियों के हाथ दिये,
देखा भी नहीं उधर फिरकर
जिस ओर रहा वह भिक्षु इतर
चिल्लाया किया दूर दानव
बोला मैं - धन्य, श्रेष्ठ मानव।' (अपरा)

'भिक्षुक' में भी पीड़ित मानवता का चित्रण है। पंत जी ने भी समाज में स्त्रियों को गिरा हुआ और हेय पाया। इसके लिए वे पुरुषों को दोषी ठहराते हैं। वे स्त्री अधिकारों का वर्णन करते हैं और चाहते हैं कि पुरुष उनके स्वत्वों को उन्हें दें :-

'पुरुषों की ही आंखों से नित देख देख अपना तन,
पुरुषों के ही भावों से अपने प्रति भर अपना मन।
- - - - - - - - - - - - - - - - - -
उसे मानवी का गौरव दे पूर्ण स्वत्व दो नूतन,
उसका मुख जग का प्रकाश हो उठे अंग अवगुंठन
खोलो हे मेखला युगों से कटि प्रदेश से वन में
अमर प्रेम ही बंधन उसका, वह पवित्र हो मन से। (युगवाणी: नर की छाया)

'प्रसाद' जी ने सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन लाने के लिए नर-नारी के सम-अधिकारों की घोषणा की है :-

'तुम भूल गए पुरुषत्व मोह में, कुछ सत्ता है नारी की
समरसता है संबंध बनी अधिकार और अधिकारी की । (कामायनी:इड़ा)

सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन के लिए सब भेद भाव भूलकर परस्पर एकता के सूत्र में बंधकर रहने की महती कल्पना की गयी है ।

छायावादी काव्य में सांस्कृतिक मूल्यों का नवीन स्थापना हुई है । पंतजी ने संस्कृति के स्वर्गिक स्पर्शों के गीत गाए हैं :-

मैं प्रेमी उच्चादर्शों का
संस्कृति के स्वर्गिक स्पर्शों का,
जीवन के हर्ष विमर्शों का,
लगता अपूर्ण मानव जीवन
मैं इच्छा से उन्मन, उन्मन - (गुंजन)

नवीन सांस्कृतिक मूल्यों के लिए एक ओर तो वे आध्यात्मिकता चाहते हैं और दूसरी ओर साम्यवाद का भौतिकतापूर्ण पक्ष । आध्यात्मिक मूल्यों के विषय में 'युगान्त' में वे लिखते हैं :-

'गा कोकिल सन्देश सनातन
मानव दिव्य स्फुलिंग चिरंतन,
वह न देह का नश्वर रजकण
देश काल है उसे न बंधन,
मानव का परिचय मानव पन । (युगान्त)

पंत जी ऐसी सभ्यता और सांस्कृतिक का गान करते हैं जिसमें वर्ग भेद, रूढ़ि और

शोषण का नाम भी न होगा :-

ज्ञानबद्ध निष्क्रिय न जहां मानव मन
मृत आदर्श न बंधन, सक्रिय जीवन ।
रूढ़ रीतियां जहां न हो आराधित
श्रेणि-वर्ग में मानव नहीं विभाजित ।
धन बल से हो जहां न जन-श्रम शोषण
पूरित सब जीवन के निखिल प्रयोजन
ऐसा स्वर्ग धरा में हो समुपस्थित
नव मानव - संस्कृति किरणों से ज्योतित । (युगवाणी: नवसंस्कृति)

साहित्य के सत्य, शिव और सुन्दर के वे सामान्य जीवन के बीच में देखना चाहते हैं । कला के इन कल्पित मापदण्डों को वे जीवन से अनुप्राणित देखना चाहते हैं :-

सुन्दर शिव सत्य कला के कल्पित माप-मान
बन गए स्थूल जग-जीवन से हो एक प्राण ।
मानव स्वभाव ही बन मानव आदर्श सुकर
करता अपूर्णको पूर्ण असुन्दर को सुन्दर । (युगवाणी-नवदृष्टि)

युग की इन बदलती हुई व्यवस्थाओं में धर्म और सदाचार का महत्व मानव - हित पर निर्भर होगा :-

धर्म, नीति औ' सदाचार का मूल्यांकन है जन हित
सत्य नहीं वह जनता से जो नहीं प्राण - संबंधित ।
(युगवाणी : मूल्यांकन)

पंत जी ऐसी संस्कृति का विकास करना चाहते हैं जिसमें व्यक्तिगत लाभ की अपेक्षा

मानव - मात्र का कल्याण निहित हो :-

` क्षुद्र व्यक्ति को विकसित हो अब बनना है जन मानव
सामूहिक मानव को निर्मित करनी है संस्कृति नव । `

(युग वाणी: गंगा का प्रभात)

पंत जी साम्यवादी भौतिकता और गांधीवाद के समन्वय द्वारा एक ऐसी संस्कृति का उदय चाहते हैं जो भौतिक और आध्यात्मिक दोनों ही सुखों की सृष्टिकर्त्री होगी:-

` गांधीवाद जगत मे आया ले मानवता का नव मान
सत्य अहिंसा से मनुजोचित नव संस्कृति का नव प्राण
मनुष्यत्व का तत्व सिखाता निश्चय हमको गांधीवाद
सामूहिक जीवन-विकास की साम्य - योजना है अतिवाद
साम्यवाद के साथ स्वर्ण युग करता मधुर पदार्पण
मुक्त निखिल मानवता करती मानव का अभिवादन । (युग वाणी)

निराला जी ` तुलसीदास ` में भारत के सांस्कृतिक-सूर्य के अस्त होने से विषण्ण दिखाई देते हैं :-

भारत के नभ का प्रभापूर्य
शीतल ज्वाय सांस्कृतिक सूर्य
अस्तमित आज रे - तमस्तूर्य दिङ्मंडल,
उर के आसन पर शिरस्त्राण
शासन करते हैं मुसलमान,
है उर्मिल जल, निश्चलत्प्राण पर शतदल । `

सांस्कृतिक जागरण की चेतना का जितना काव्याभिव्यंजन निराला ने किया है उतना सम्भवतः प्रसाद के अपवाद सहित किसी ने नहीं ।[१] महादेवी वर्मा के काव्य में भारतीय संस्कृति के मूल अध्यात्म की स्वीकृति है । अतः हम देखते हैं कि छायावादी काव्य में सांस्कृतिक मूल्यों को नवीन दृष्टि प्रदान की गयी है ।

इस प्रकार "छायावादी काव्य व्यक्तिनिष्ठ न होकर मूल्यनिष्ठ रहा है । उसमें व्यक्ति मूल्य का प्रतिनिधि रहा है ।"[२]

---

१ - निराला काव्य : पुनर्मूल्यांकन : डा० धनंजय वर्मा : पृष्ठ ५६ ।
२. छायावाद : पुनर्मूल्यांकन: पंत: १९६५, ५० से०, पृ० १०२ ।

च छायावादी काव्य की चिन्तन दृष्टि

यद्यपि काव्य और दर्शन के संबन्धों पर विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है, तथापि छायावादी काव्य पर विभिन्न दार्शनिक विचार सरणियों का प्रभाव पड़ा है। प्राचीनकाल से लेकर अबतक इस देश की जो भीड़ दार्शनिक धरोहर है उससे तो इस काव्य ने आत्मसात् किया ही, साथ ही साथ पाश्चात्य दार्शनिक विचारों के सारांश को लेते हुए उसने भारतीय सांस्कृतिक पुनर्जागरण काल के मान्य नेताओं रवीन्द्रनाथ, विवेकानन्द, महात्मा गांधी और महर्षि अरविन्द के विचारों का भी समन्वय किया। अतः छायावादी काव्य की आत्मा दार्शनिकता से ओत-प्रोत है। हम छायावादी काव्य इस चिन्तनधारा को निम्नांकित शीर्षकों में देख सकते हैं :-

(१) वैदिक दर्शन
(२) औपनिषादिक विचारधारा
(३) शैव दर्शन और
(४) बौद्ध दर्शन
(५) पाश्चात्य दर्शन और
(६) भारत के आधुनिक विचारकों के दर्शन -

क - विवेकानन्द
ख - महर्षि अरविन्द
ग - महात्मा गांधी।

यहां संक्षेप मेंइनका वर्णन दिया जा रहा है।

(१) वैदिक दर्शन :

भारतीय मनीषा चरमोत्कर्ष है - अद्वैतवाद। वैदिक ऋषियों की अन्तर्दृष्टि में यह आभास हो उठा था कि इस ब्रह्माण्ड के मूल में एक ही शक्ति है। वही

ईश्वर है और वही समस्त शक्तियों का मूल है। इसी ईश्वर की अनेक शक्तियां हैं - परम व्योम, परम्पद, अग्नि, आदित्य, वायु, चन्द्रमा, ब्रह्म, अप्, प्रजापति आदि। छायावादी कवि ने इस वैदिक एकेश्वरवाद को स्थान - स्थान पर निर्दिष्ट किया है। छायावाद के सर्वश्रेष्ठ कवि श्री जयशंकर प्रसाद ने ` कामायनी ` के आशा सर्ग में विश्वदेव, सविता, पूषा, सोम, मरुत, ग्रहनक्षत्र, विद्युत्कण आदि को इस एक मात्र ईश्वरीय शक्ति का संधान करते प्रस्तुत किया है -

` विश्वदेव, सविता या पूषा,
व्योम, मरुत्, चंचल, पवमान
वरुण आदि सब घूम रहे हैं
किसके शासन में अम्लान ?
- - - - - - - - -
महनील इस परमव्योम में,
अन्तरिक्ष में ज्योतिर्मान
ग्रह, नक्षत्र और विद्युत्कण
किसका करते हैं संधान ? (कामायनी : आशा)

पंत जी की ` परिवर्तन ` नाम्नी कविता में भी यही भाव व्यक्त हुआ है :

` एक छवि असंख्य के उडुगण
एक ही सब में स्पन्दन,
एक छवि के विभात में लीन,
एक विधि के रे नित्य अधीन !

'निराला' ने भी वैदिक दर्शन को ग्रहण किया है :

ब्रह्म हो तुम,
पद रज भर भी है नहीं
पूरा यह विश्वभार
जागो फिर एक बार। (अपरा)

महादेवी वर्मा ने भी इसी वैदिक आस्था की अभिव्यक्ति अपने काव्य में अनेक स्थलों पर की है। उनके अनुसार उसी ब्रह्म की आभा का एक कण आकाश को असंख्य दीपों से मंडित कर देता है, दिन को स्वर्णिम प्रकाश से भर देता है और रात्रि के लिए रत्नपट्टा परिधान तैयार कर देता है - तेरी आभा का कण नभ को देता अगणित दीपक दान। 'यामा' में उन्होंने उस विराट् को अप्सरा रूप में प्रस्तुत किया है। दिन और रात उस अप्सरा के सुन्दर सित-असित चीर हैं, सागर का गर्जन उसकी रुनझुन करने वाली मंजीरे हैं, झंझा हो उसका झीना जाल है, मेघरव उसकी किंकिणी है और रवि - शशि उसके चंचल अवतंस हैं :-

'मेघों से मुखरित किंकिणी स्वर
अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर।
रवि शशि तेरे अवतंस लोल
सीमन्त जटित तारक अमोल
चपला विभ्रम, स्मित इन्द्रधनुष,
हिम कण बन झरते स्वेद निकर
अप्सरि तेरा सुन्दर नर्तन। (यामा)

अतः छायावादी काव्य में वैदिक दर्शन का एक महत्वपूर्ण स्थान है।

(२) <u>औपनिषादिक विचारधारा</u> -

निर्गुण ब्रह्म पर गुणों का आरोपण उपनिषत्कार ने किया। उसने निखिल विश्व के व्यक्त सौन्दर्य में उस विराट् सत्ता के दर्शन किए। उपनिषदों का वही ब्रह्म 'छायावादी काव्य में अनिर्वचनीय कहकर पुकारा गया है' -

अहे अनिर्वचनीय ! रूपधर भव्य भयंकर
इन्द्रजाल-सा तुम अनन्त में रचते सुन्दर,
गरज-गरज हंस-हंस, चढ़-गिर, छा-ढा-भू-अम्बर
करते जगती को अजस्र जीवन से उर्वर ।

(पल्लव)

उपनिषदकार ने ब्रह्म को असीम, सर्वोच्च, निष्कलुष, परम आनन्दमय, एक और ऐसा अद्वितीय कहा है जिसमें अन्य किसी विजातीय तत्व का प्रवेश सम्भव नहीं । वह सत्, चित् और आनन्दस्वरूप है । उपनिषदों के अनुसार परमात्म ज्ञान का क्रम इस प्रकार है - अन्नमय कोष, प्राणमय कोष, मनोमय कोष, विज्ञानमय कोष और आनन्दमय कोष । छायावादी काव्य में इसका वर्णन है :-

अन्न प्राणमय आत्मा केवल
ज्ञानमेद हैं सत्य के परम
इन सब में चिर व्याप्त ईश रे
मुक्त सच्चिदानन्द चिरन्तन ।

(स्वर्ण धूलि)

जीव और ब्रह्म एक ही हैं । वे उपनिषदों में अंश और अंशीरूप में व्यक्त हुए हैं । इसलिये वहाँ अग्नि और स्फुलिंग का दृष्टान्त दिया जाता है । प्रश्नोपनिषद में ब्रह्म और जीव को सूर्य और उसकी किरणों के रूप में व्यक्त किया गया है । महादेवी जी भी लगभग ये ही भाव व्यक्त करती हैं :-

(क) मैं तुमसे हूं एक, एक हैं
जैसे रश्मि-प्रकाश ।

(ख) तुम हो विधु के बिम्ब और मैं
मुग्धा रश्मि अजान
जिसे खींच लाते अधीर कर
कौतूहल के बाण

(रश्मि)

यह जगत प्रकट होने के पहले अव्यक्त रूप में था :-

न थे जब परिवर्तन दिन रात
नहीं आलोक तिमिर थे ज्ञात
- - - - - - - - - - -
एक कम्पन थी एक हिलोर ।

(रश्मि)

ब्रह्म ने अपने को जगत के रूप में व्यक्त किया :-

हुआ यों सूनेपन का भान
प्रथम किस के उर में अम्लान
और किस शिल्पी ने अनजान
विश्व-प्रतिमा कर दी निर्माण ?

(रश्मि)

पंत जी ने भी पल्लव की एक कविता में इन्हीं भावों की व्यंजना करते हैं। महाकवि निराला ने भी समस्त चराचर विश्व में अपनी ही ज्योति का दर्शन किया है :-

ज्योतिर्मय चारों ओर
परिचय सब अपना ही । (निराला ग्रन्थावली-१)

और भी एक स्थल पर वे कहते हैं कि :-

जिस प्रकाश के बल से
सौर ब्रह्माण्ड को प्रकाशित देखते हो
उससे नहीं बंचित है एक भी मनुष्य भाई
व्यष्टि औ समष्टि में समाया वही एक रूप
चिद्, घन, आनन्द कन्द । (निराला ग्रन्थावली-१)

३. शैव दर्शन -

शैव-दर्शन का प्रभाव 'प्रसाद' जी पर पड़ा था। वैसे तो वे उपनिषदों के ब्रह्मवाद और अद्वैतवाद से प्रभावित हैं, फिरभी उनकी अद्वैतवादी भावना, उनका समरसता का सिद्धांत और आनन्दवाद उपनिषदों से नहीं अपितु शैवदर्शन से विशेष प्रभावित हैं। शैव दर्शन के प्रत्यभिज्ञा दर्शन के वे अत्यन्त प्रेमी थे। शैव दर्शन का ईश्वराद्वय ही यहां प्रत्यभिज्ञा दर्शन कहलाता है।

शैवदर्शनानुसार समस्त सृष्टि में शिव ही एक मात्र तत्व है। अन्य तत्व उसी शिव तत्व से ओत-प्रोत हैं। यह शिव तत्व प्रत्येक जीव में व्याप्त है जिसे आत्म तत्व कहा जाता है और यह चैतन्य स्वरूप है। इस शिव तत्व को परम शिव, शिव और पराशक्ति भी कहा गया है। यह समस्त जड़ चेतन में समान रूप से व्याप्त है:-

वैसे अभेद सागर में
प्राणों का सृष्टि क्रम है,
सब में घुल मिल कर रसमय
रहता यह भाव चरम है। (कामायनी : आनन्द सर्ग)

यह परम शिवतत्व विश्व व्यापी है और पूर्ण आनन्द स्वरूप है :-

'कर रही लीलामय आनन्द,
महाविति सजग हुई सी व्यक्त।
विश्व का उन्मीलन अभिराम
इसी में सब होते अनुरक्त।'
(कामायनी : श्रद्धासर्ग)

शैव-दर्शन में विमर्श शक्ति तत्व की बात आती है। इसे प्रकाशात्मा कहा गया है। सृष्टि की अवस्था में विश्वाकार होने से, स्थिति की अवस्था में विश्व को प्रकाशित करने से तथा संहार की अवस्था में आत्मसात् करने से शिव में जो अहंभाव है उसे ही विमर्श शक्ति कहते हैं। यदि वह शक्ति न हो तो शिव ईश्वर न होकर जड़ हो जायेंगें।

यों तो इस शक्ति के अनेक स्वरूप हैं परन्तु उनमें पांच अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं :- चित्, आनन्द, इच्छा, ज्ञान और क्रिया शक्तियां अपनी शक्ति के इन्हीं पांचों स्वरूपों द्वारा वे समस्त सृष्टि की अभिव्यक्ति करते हैं। यह समस्त जगत शिव की इसी शक्ति का ही विस्तार है:-

' अपने दुख से पुलकित
यह मूर्त विश्व सचराचर
चिति का विराट वपु मंगल
यह सत्य सतत चिर सुन्दर' । (कामायनी)

शैव दर्शन का एक पक्ष आनन्दवाद भी है। यह विश्व आनन्दस्वरूप शिव तत्व की अभिव्यक्ति है। यहां बौद्धों के दु:खवाद और मिथ्यावाद को प्रश्रय नहीं है। 'कामायनी' में इस आनन्द शक्ति का वर्णन है :-

' समरस थे जड़ या चेतन
सुन्दर साकार बना था
चेतनता एक विलसती
आनन्द अखण्ड घना था । (कामायनी)

आनन्द-प्राप्ति समरसता द्वारा होती है। सुख-दुखादि द्वन्द्वों का अभाव ही समरसता है। 'कामायनी' में इस आनन्द की ओर क्रमश: प्रगति है :-

' रस के निर्झर में धंस कर मैं
आनन्द शिखर के प्रति बढ़ती' ' (कामा0: लज्जा)

४. बौद्ध-दर्शन :

छायावादी काव्य में बौद्ध दर्शन भी मिलता है। वेदान्त और बौद्ध दर्शन में अत्यन्त निकट का सम्बन्ध है। चूंकि छायावादी काव्य वेदान्त दर्शन से प्रभावित है, अतः बौद्ध दर्शन से भी वह अछूता नहीं रह सका है। छायावाद की प्रसिद्ध कवियित्री महादेवी वर्मा बौद्धों के करुणावाद से प्रभावित दिखाई पड़ती हैं -

"बचपन से ही भगवान बुद्ध के प्रति एक भक्तिमय अनुराग होने के कारण, उनके संसार को दुःखात्मक समझने वाले दर्शन से मेरा असमय ही परिचय हो गया था।" १

छायावादी कवियों ने महात्मा गांधी के व्यक्तित्व से प्रेरणा ली थी और महात्मा गांधी ने बौद्धों के मौलिक सिद्धान्तों - मैत्री, करुणा, मुदिता आदि गुणों का अपने जीवन में प्रयोग किया था। चूंकि छायावादी कविता पर गांधीजी का प्रभाव था, अतः वह बुद्ध दर्शन से भी प्रभावित माना जा सकती है। "प्रसाद" पर भी बौद्धों की करुणा और दुःखवाद का प्रभाव था।

बौद्ध-दर्शनानुसार विश्व की कोई वस्तु नित्य नहीं है, समस्त जगत ही नश्वर और अनित्य है। बौद्ध दर्शन में इसी को क्षणिकवाद की संज्ञा दी गयी है। संसार की प्रत्येक वस्तु क्षणभंगुर और नाशवान है। यहां तक कि जो सत् है वह भी क्षणिक है। बुद्ध दर्शन कहता है - दुःख है। इससे निराशावाद का जन्म होता है। जिस प्रकार हिन्दी-साहित्य का सन्तकाव्य शून्यवाद और करुणावाद के क्षेत्र में बौद्ध दर्शन का ऋणी है, उसी प्रकार छायावादी काव्य भी इससे मुक्त नहीं रहा। इस तरह छायावादी कवि अपनी निजी परिस्थितियों, स्वभाव तथा युगीन प्रवृत्तियों के परिणाम स्वरूप बौद्धों के सिद्धान्तों से भी निश्चित रूप से प्रभावित हुए तथा किसी-न-किसी रूप में उनका दुःखवाद, संसार की अनित्यता और क्षणिकता का भाव, उनका करुणावाद और उनकी मध्यमा प्रतिपदा के आख्यान आदि की झलक छायावादी कविता में देखी जा सकती है। २८

---

१. मामा, अपनी बात : पृष्ठ १२
२. छायावादी काव्य : डॉ० कृष्ण चन्द्र वर्मा : पृष्ठ २१५

५. पाश्चात्य दर्शन

प्रस्तुत प्रबन्ध के द्वितीय अध्याय में छायावादी काव्य पर अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों के प्रभाव की चर्चा की जा चुकी है। अतः यह भी माना ही जा सकता है कि इस काव्य पर पाश्चात्य दर्शनों का प्रभाव भी पड़ा ही होगा। इस काव्य पर मुख्यतः शोपेन हावर, हीगल, बर्गसां और शा के प्रभाव पड़े थे।

प्रसिद्ध दार्शनिक शोपेन हावर ने निराशावादी दर्शन को जन्म दिया। छायावादी काव्य में निराशावाद का जो रूप मिलता है, वह निश्चित ही शोपेन हावर के इस दर्शन से प्रभावित है। केवल यह बौद्धों के दुःखवाद तक ही सीमित नहीं है।

छायावादी काव्य पर सबसे अधिक प्रभाव हीगल का पड़ा है। हीगल का क्षेत्र आध्यात्मिक था और वह शंकराचार्य और रामानुजाचार्य के दर्शनों के बहुत समीप है। रामानुज के विशिष्टाद्वैत में अनेकता में एकता या भेद में अभेद-दर्शन है। इधर हीगल ने द्वन्द्वमूलक समन्वयवाद का प्रतिपादन किया जिसे हम भेद विशिष्ट अभेदवाद की संज्ञा दे सकते हैं। प्रसाद की 'कामायनी' में सुख-दुःख और आशा-निराशा के प्रति समन्वयवादी दृष्टि का ही दर्शन होता है :-

'यही सुख-दुःख विकास का सत्य
यही भूमा का मधुमय दान।'

अथवा -

'दुःख की पिछली रजनी बीच
विकसता सुख का नवल प्रभात।'

हीगल, जगत को सत्य मानता है और यही छायावादी काव्य में है - 'तप नहीं केवल जीवन सत्य।' हीगल प्रेम के आध्यात्मिक पक्ष को पुनीत और वरेण्य मानते हैं और उसके वासनामूलक पक्ष को हेय और त्याज्य। छायावादी कवि भी कहता है -

(क) 'देह नहीं है परिधि प्रणय की,
प्रणय दिव्य है मुक्ति हृदय की -' (स्वर्ण किरण)

(ख) इधर कोमल शब्दों को बुन-बुन में लिखता जन-जन के मन मर
मानव-आत्मा का सार्व प्रेम, जिस पर है जग-जीवन निर्भर।'
(युगवाणी)

बर्गसां का भी प्रभाव छायावादी कविता पर है, विशेषकर पंत पर । पंतजी बर्गसां के सर्जनात्मक विकासवाद से विशेष प्रभावित हैं । उनकी 'स्वर्ण धूलि' में आशंका, मृत्युञ्जय और अन्तर्विकास आदि कविताओं में बर्गसां के इसी दर्शन का प्रभाव है :-

सृजनशील, जग विकास
जड़ जीवन मनोभास (स्वर्ण धूलि)

मार्क्सवादी दर्शन छायावादी काव्य में मिलता है परन्तु इस अन्तर के साथ ही यह काव्य उसे उसके यथावत् रूप में नहीं स्वीकार करता ।

छायावादी कविता में पाश्चात्य रूबाइयों का - विशेषतया इडवर्ड फिट्जराल्ड के उनके अंग्रेजी अनुवाद का - प्रभाव दिखायी पड़ता है । महादेवी जी की प्रस्तुत पंक्तियां इसका प्रमाण है :-

तेरा अधर विचुम्बित प्याला
तेरी ही स्मित मिश्रित हाला
तेरा ही मानस मधुशाला
फिर क्यों पूछूं मेरे साकी
देते हो मधुमय विषमय क्या !

'कामायनी' में भी ऐसी ही पंक्तियां दृष्टिगोचर होती है :-

इन्द्रनील मणि महा चषक था
सोम रहित उलटा लटका ।

निष्कर्षतः हम यह कह सकते हैं कि छायावादी काव्य में पाश्चात्य दर्शन भी मिलते हैं परन्तु इन कवियों ने इसका उपयोग भारतीय दर्शन सम्बन्धी मान्यताओं के परिवर्धन और परिपोषण के लिये ही किया है ।

६. आधुनिक भारतीय विचारकों के दर्शन

(क) विवेकानन्द दर्शन - विवेकानन्द जी ने उपनिषदों के ब्रह्मवाद को स्वीकार किया है। यह ब्रह्म सर्वव्यापी, अखण्ड, अनिवर्चनीय, अजेय और अव्यक्त है। छायावादी कवियों का ब्रह्म भी इसी प्रकार का है। स्वामी विवेका नन्द ने जगदम्बा का आव्हान किया है। निराला और पंत भी ऐसा ही करते हैं। निराला की कुछ पंक्तियां देखें :-

(क) एक बार बस और नाच तू श्यामा - अपरा

(ख) सारे ब्रह्माण्ड के जो मूल में विराजती है आदि शक्ति रूपणी,
जिनके गुण गाकर भवसिन्धु पार करते नर
प्रणव से लेकर प्रतिमंत्र के अर्थ में (पंचवटी प्रसंग)

विवेकानन्द ने ईश्वर को मातृशक्ति के रूप में देखा है। एन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि ईश्वर का जीता-जागता रूप मानव है, अतः मानव सेवा ही ईश्वर की पूजा है। निराला-काव्य में दीन-हीनों के प्रति जो सहानुभूति दिखायी गयी है वह भी इसी विवेकानन्दी प्रभाव का परिणाम है। समस्त छायावादी काव्य में मानव-महत्ता की जो स्वीकृति हुई उसके मूल में स्वामी जी के इसी दर्शन का प्रभाव है। स्वामी विवेकानन्द ने प्रेम को ही ईश्वर माना है। पंत जी ने भी मानव में प्रेम के द्वारा धरती पर स्वर्ग का अवतरण स्वीकार किया है : -

मनुज प्रेम से जहां रह सके - मानव ईश्वर।
और कौन सा स्वर्ग चाहिए, तुम्हें धरा पर! (युगवाणी)

विवेकानन्द की ईश्वर, मानव-ईश्वर, प्रेम-भावना आदि का छायावादी कवियों पर पर्याप्त प्रभाव रहा।

(ख) अरविन्द दर्शन - महर्षि अरविन्द जो पहले बहुत बड़े क्रांतिकारी थे बाद में चलकर महान योगी हो गये। उन्होंने डार्विन के विकासवाद को आगे बढ़ाते हुए अतिमानव (सुपर मेन) की कल्पना की, सामूहिक मुक्ति, पृथ्वी और स्वर्ग का समन्वय

तथा दिव्य जीवन की कल्पना की । अरविन्द का प्रभाव मुख्यत: पंत पर पड़ा है । श्री अरविन्द ने अपने दर्शन में जड़ और चेतन के समन्वय की बात कही है । पंतजी के काव्य में तम, प्रकाश, मर्त्य-अमर, शरीर-आत्मा, सत्-असत्, श्रेय-प्रेय, हह-मर, स्थूल-सूक्ष्म, व्यक्ति-विश्व, अध-ऊर्ध्व, वाह्य-आभ्यन्तर, स्वर्ग-धरती, विद्या-अविद्या, ज्ञान-भावना, बुद्धि-हृदय के द्वन्द्वों द्वारा श्री अरविन्द के समन्वय सिद्धांत का ही प्रतिपादन हुआ है :-

(क) मर्त्य-अमर की एक पांति में पूरक मान बिठाओ - (वाणी)

(ख) स्थूल-सूक्ष्म को नव प्रकाश में जीवन में होना संयोजित - (वाणी)

अपनी रचनाओं में वे अरविन्द जी की प्रशस्ति भी करते हैं :-

ज्योति श्री अरविन्द, चेतना के दिव्योत्पल,
पूर्ण सच्चिदानन्द रूप शोभित स्वर्णोज्वल ।
मानव से ईश्वर, ईश्वर से मानव बनकर
आये लौट धरा पर, ले नव जीवन वर । - (स्वर्ण किरण)

महाकवि निराला की 'तुलसी दास' रचना में उर्ध्व-गमन की चर्चा है:-

दृष्टि से भारती की बंधकर
कवि उठता हुआ चला उनपर,
केवल अम्बर - केवल अम्बर फिर देखा

निस्तब्ध व्योम - गतिरहित द्वन्द्व,
आनन्द रहा, मिट गये द्वन्द्व, बन्धन सब । (अपरा: पृष्ठ १७४-७५)

उर्ध्व-गमन की यह अवस्था श्री अरविन्द के 'सावित्री' काव्य से मिलती जुलती है । सम्भवत: 'कामायनी' के उर्ध्वगमन और आनन्दावस्था की कहानी भी इसी दर्शन से प्रभावित मालूम पड़ती है ।

इस प्रकार अरविन्द दर्शन का प्रभाव पंत और निराला के काव्यों पर है ।

गान्धी-दर्शन

छायावाद की पृष्ठिभूमि में हमने अवलोकन किया है कि उस पर उस युग के प्रमुख उन्नायक गान्धी का प्रभाव है। मौतिकता के इस युग में गांधी जी आध्यात्मिकता का संदेश लेकर आये। पंतजी लिखते हैं :थ

जड़वाद जर्जरित जग में तुम
अवतरित हुए आत्मा महान।
यंत्राभिभूत जग में करने
मानव-जीवन का परित्राण।

गांधी जी ने बढ़ते हुए यंत्रों की विभीषिका का प्रतिरोध किया क्योंकि वह मानव की नैसर्गिक प्रकृत् शक्ति को छीनती है और अनेक समस्याओं को जन्म देती है। 'कामायनी' में प्रसादजी भी यही प्रतिपादित करते हैं :-

प्रकृत् शक्ति तुमने यंत्रों से सबकी छीनी
शोषण कर जीवनी बना दी जर्जर झीनी। (कामायनी)

गान्धी दर्शन के अनुसार, आर्थिक प्रगति का मूल चर्खा या तकली है। 'कामायनी' में श्रद्धा भी मनु के मृगयार्थ दूर चले जाने पर तकली चलाती है। सम्भवत: यह गांधीवादी प्रभाव ही है :-

'मैं बैठी गाती हूं तकली के
प्रतिवर्तन में स्वर-विभोर -
चलती तकली धीरे धीरे
प्रिय गए खेलने को अहेर।' (कामायनी)

गांधी जी के दर्शन का मूल है सत्य, अहिंसा और प्रेम और पंतजी कहते हैं कि इनही के विकास से लोक-मंगल सम्भव है :-

'आधार अमर होगी जिसपर
भावी की संस्कृति समासीन।'

गान्धी जी के अतिरिक्त छायावादी काव्य पर रवीन्द्र दर्शन का भी प्रभाव है। छायावाद की आध्यात्मिकता और विश्ववादी विचारों पर रवीन्द्र की स्पष्ट छाप है।

निष्कर्ष -

छायावादी काव्य-दर्शन पर पूर्ववर्ती और वर्तमान, पौर्वात्य और पाश्चात्य आदि अनेक दर्शनों का प्रभाव है। छायावादी कवि ने इन सबके समन्वित रूप को ग्रहण कर एक अत्यन्त उदात्त काव्य की सृष्टि की जो अपने समस्त परिवेश में सर्वथा नवीन थी।

ङ : छायावादी काव्य-शिल्प

(१) भाषा-शिल्प

शताब्दियों से व्यवहार में आते रहने के कारण ब्रजभाषा घिस-मज कर सरस, सुकुमार और सुन्दर हो गयी थी और खड़ी बोली का व्यवहार यद्यपि भारतेन्दु काल से ही हो चला था, फिरभी उसकी कर्कशता, खड़खड़ाहट, रूक्षता आदि द्विवेदी युग तक आकर भी निःशेष न हो सके थे। समर्थ काव्य-सर्जकों के लिए भाषा की चुनौती सबसे पहले पहली चुनौती थी और छायावादी कवियों ने इसे वीर भाव से स्वीकार किया और फिर क्या था ` पतझड़ की भाषा देखते-देखते कुसुमित शब्दों से लद गयी'। [१]

ब्रजभाषा को चुनौती देते हुए पंतजी ने उद्घोष किया कि :-

` हम इस ब्रज की जीर्ण-शीर्ण छिद्रों से भरी, पुरानी छींट की चोली को नहीं चाहते, इसकी संकीर्ण कारा में बन्दी हो हमारी आत्मा वायु की न्यूनता के कारण सिसक उठती है, हमारे शरीर का विकास रूक जाता है। हमें यह पुराने फैशन की मिस्सी पसन्द नहीं, जिससे हमारी हंसी की स्वाभाविक उज्वलता रंग जाती, फीकी और मलिन पड़ जाती है। यह बिलकुल आउट-आफ़-डेट हो चुकी है।' [२] परन्तु खड़ी बोली नवयुग की भावनाओं और आकांक्षाओं को व्यक्त करने में सक्षम, अप-टू-डेट भाषा थी।` उसमें नये कटाक्ष, नये रोमांच, नये स्वप्न, नया हास, नया रूदन, नयाहृत्कम्पन, नवीन वसंत, नवीन कोकिलाओं का गान है। [३] इस प्रकार खड़ी बोली आगे की सुवर्णाशा बन गयी।` उसकी बाल-कला में भावी की लोकोज्वल पूर्णिमा छिपी है। वह हमारे भविष्याकाश की स्वर्गगंगा है --- वह समस्त भारत की हृत्कम्पन है।`

---

१ - आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियां : डा० नामवर सिंह: पृष्ठ ३७
२ - पल्लव-प्रवेश: पंत : पृष्ठ २४
३ - पल्लव प्रवेश : पंत : पृष्ठ २५।

इस प्रकार छायावादी काव्य में रीतिकालीन कृतिमता की जगह प्राकृतिकता का दर्शन होता है। यहां भाषा की प्राचीनता के परित्याग और उसके प्रकृत-प्रवाह के प्रति दृष्टि का भी परिचय मिलता है।

(१) छायावादी भाषा की उदारता

जहां छायावादी भाषा ने ब्रजभाषा को करारी चुनौती दी वहीं उसने उसका तिरस्कार भी न कर अपनी उदारता का परिचय दिया। अन्य भाषायी शब्दों की स्वीकृति द्वारा उसने अपने क्लेवर की पुष्टि और श्रीवृद्धि की।

क - ब्रजभाषा के प्रति उदारतावादी दृष्टि :-

छायावादी काव्य भाषा पर ब्रजभाषा के भी संस्कार हैं और प्रचुर परिमाण में। प्रसादजी की प्रारम्भिक कविताओं में ब्रजभाषा के संस्कार नहीं छूट पा रहे थे। पंतजी की कविताओं से अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं :-

१ - बाल युवतियां तान कानतक
चिल चितवन के बन्दनवार। (पल्लव: पृष्ठ ८७)

२ - इन्द्रधनु की सुनकर टंकार
उचक चपला के चंचल बाल। (पल्लव: पृष्ठ ६८)

३ - कानतक खिचे अजान नयन
सहज था सजा सजीला तन (पल्लव: पृष्ठ ५६)

४ - घूम घूआरे काजर कारे
हम ही बिकरारे बादर (पल्लव, पृष्ठ १३४)

इसी प्रकार 'उमड़कर फले अबूझ अपार', 'स्वर्णा तृण पात' और 'प्रसूनों के ढिंग रेकर' में भी ब्रजभाषा का सम्मोहन देखा जा सकता है। इस प्रकार छायावादी काव्य भाषा में ब्रजभाषा के रूपों को ढूंढा जा सकता है।

ख - आंग्ल बब्दों के प्रति दृष्टि :-

छायावादी काव्य पर अंग्रेजी रोमांटिक कवियों का प्रभाव है । अत: उनकी भाषा पर भी आंग्ल प्रभाव है । कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं :-

१ - बालिका मेरी मनोरम मित्र थी (पल्लव : पृष्ठ ६) - लंबली फ्रेन्ड ।
२ - यह कैसा स्वर्गीय हुलास (पल्लव, पृष्ठ २१) हेवेनली बिलास ।
३ - हे विधि फिर अनुवादित कर दो (पल्लव, पृष्ठ ७२) ट्रान्सलेट ।
४ - वह सुवर्ण का काल (पल्लव, पृष्ठ ७६) गोल्डेन एज ।
५ - वृथा रे ये अरण्य चीत्कार (पल्लव, पृष्ठ ८५) क्राइ इन दी वाइल्डरनेस ।
६ - कहेंगे नीरव प्रणयाख्यान (गुंजन, पृष्ठ ४४) लव-स्टोरी ।
७ - कल्पना के कानन की रानी (गीतिका, पृष्ठ २६) क्वीन आफ दी फारेस्ट ।
८ - मुक्त हुए आ स्नेह के क्षितिज (गीतिका, पृष्ठ १२) होराइजन्स आफ दी लव ।
९ - सोने के संगीत राज्य में (अनामिका, पृष्ठ ५४) गोल्डेन रील्म आफ म्यूजिक ।
१० - दौड़ते सभी कैमरा हाथ (अनामिका, पृष्ट ८६) कैमरा ।
११ - थकी अंगुली हैं ढीले तार (यामा, पृष्ठ १) लूज स्ट्रिंज ।

ग - उर्दू के शब्द

१ - सुन्दरता के इस परदे में (कामा०, पृष्ठ ७४)
२ - झंझा के परदों के पार (यामा, पृष्ठ १४)
३ - उसी की धड़कन में तूफान (यामा, पृष्ठ ३१)
४ - बेहोशी है या जागृतिनव (यामा, पृष्ठ १०८)
५ - बस मेरा हक मुझको दे देना (परिमल, पृष्ठ ७३)
६ - रस्में अदा हुई थी (परिमल, पृष्ठ १५६)
७ - मदद नहीं करती सरकार (अनामिका, पृष्ठ १८०)
८ - किन्तु नजर भर देख न पाया (अनामिका, पृष्ठ ३४) ।

घ - बंगला के शब्द

बंगला ने संस्कृत के अनेक शवदों को ज्यों का त्यों स्वीकार कर लिया है। इधर हिन्दी की भी जननी संस्कृत है। अत: हिन्दी और बंगला के शवदों में पर्याप्त साम्य है। `हिन्दी रिव्यू` में लिखा है कि हिन्दी और बंगला के ६० प्रतिशत शब्द समान हैं।[1] अत: यह निर्णय करना कठिन है कि कौन से शब्द-बंगला से छायावाद ने गृहीत किए। निराला की `जुही की कली` की भाषा पर रवीन्द्र नाथ टैगोर की पदयोजना का स्पष्ट प्रभाव स्वीकारा जा सकता है :-

`बिजन-बन-वल्लरी पर
सोती थी सुहाग भरी
स्नेह-स्वप्न-मग्न अमल कोमल तनु-तरुणी
जुही की कली
दृगवन्द किए शिथिल पत्रांक में।`

यहां रेखांकित पदों पर बंगला की छाप है। निराला ने रवीन्द्र से भाव भी लिए हैं और उन्हें अपनी भाषा में व्यक्त किया है। जैसे टैगोर की `गीतांजलि` की निम्न पंतियों को ले सकते हैं :-

"He is there where tiller is tilling the hard
ground and path-maker is breaking stone."

रेखांकित पद को लेकर निराला ने -`वह तोड़ती पत्थर उसे देखा इलाहाबाद के पथ पर` लिख डाला। पंत का शब्द-चयन और पद-योजना वंगीय संस्कारों पर है :-

आलोड़ित अम्बुधि फेनोन्नत कर शत-शत फन
मुग्ध भुजंगम सा इंगित पर करता नर्तन (पंत-परिवर्तन)

---

1 - "The vocabulary of Hindi and Bengali is at least sixty percent similar". Hindi Review, January, 1957, Vol.I,No.12 (Nagari Pracharini Sabha, Varanasi). Editor: Ram Awadh Dwivedi, Page 6.

अब इसके निम्नांकित बंगला रूप मिलाएं :-

तरंगित महासिन्धु मंत्र श्रांत भुजंगेर मतो

पड़े, छिलो पद-प्रान्ति उच्छ्वसित फणा लक्ष शतो। (टैगोर : उर्वशी)

"'सजल', 'शत-शत', 'राशि-राशि', 'स्वर्ण' आदि शब्दों का जो प्रयोग छायावादी कविता में प्रचुर मात्रा में मिलता है वह भी बंगला के ही प्रभाव का द्योतक है।"[१]

छ० - संस्कृत-शब्दों का ग्रहण और उन्हें नवता-प्रदान

इन कवियों ने संस्कृत के शब्दों को ग्रहण कर उन्हें एक नया तेज और नयी भंगिमा प्रदान की। प्रसाद की 'कामायनी' पंत के (पल्लव), निराला की 'राम की शक्तिपूजा' और महादेवी की 'संधिनी' में संस्कृत के शब्दों का प्रभूततम प्रयोग देखा जा सकता है। "स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन के द्वितीय चरण में काव्य-भाषा का आदर्श बिलकुल बदल गया है और एक समृद्ध भाषा शैली का विकास होने लगा जिसमें वे संस्कृत के तत्सम और ध्वनि व्यंजक शब्दों का प्रयास था। यह चमत्कारपूर्ण और आलोकमय विशेषणों का चित्रमय और ध्वन्यात्मक शब्दों का युग था।"[२]

२ - स्वतंत्र शब्द-शिल्प

छायावादी कवियों ने स्वतंत्र शब्द रचना भी की। ब्रजभाषा के मार्दव और बंगला और अंग्रेजी के लालित्य और व्यंजना (सजेस्टीविटी) के व्यामोह ने उन्हें ऐसा करने के लिए प्रेरित किया। इसमें जनपदीय आंचलिकता का भी हाथ रहा। नवीन शब्दों से युक्त कुछ पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :-

१ - पूणायवन्या ने किया पसारा - (झरना, पृष्ठ २०

२ - कैसी निरलस दृष्टि - (अनामिका, पृष्ठ ५)

३ - उर्ज्वा वातास में - (परिमल, पृष्ठ २०६)

४ - ज्योतिर्मयी लता सी हुई मैं तत्काल (अनामिका, पृष्ठ १०

१ - हिन्दी की छायावादी कविता का कला विधान : डा०बलबीर सिंह रत्न, पृ०१४४

२ - आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास : डा०कृष्ण लाल, पृ० १३६।

५ – रात दिन दृष्टि –द्वार उन्मील (वीणा, पृष्ठ २०)

६ – मृदुल उर कंपन सा वपुमान (पल्लविनी, पृष्ठ १४४)

७ – हाणिक मंगुर यौवन पर भूल (यामा, पृष्ठ ३८)

३ – अर्थविवेक दृष्टि :-

छायावादी कवियों ने प्रत्येक शब्द की आत्मा में झांका, उसे खूब समझा और प्रयोग किया। पंत जी ने 'पल्लव' के प्रवेश में और निराला ने 'मेरे गीत और कला' में शब्दों के वास्तविक अर्थों पर दृष्टि डाली है। पंत जी ने लिखा है कि अंग्रेजी में रिप्ल, विलो, वेव, और टाइड में जो सूक्ष्म भेद हैं उसे विदग्ध और समर्थ कवियों को जानना आवश्यक है। 'भिन्न – भिन्न पर्यायवाची शब्द प्राय: संगीत भेद के कारण, एक ही पदार्थ के भिन्न – भिन्न स्वरूपों को प्रकट करते हैं, जैसे 'भ्रू' से क्रोध की वक्रता, 'भृकुटि' से कटाक्ष की चंचलता, 'भौंहों से स्वाभाविक प्रसन्नता, ऋजुता का हृदय से अनुभव होता है। ऐसे ही 'हिलोर' में उठान, 'लहर' में सलिल के वक्षस्थल की कोमल कंपन, 'तरंग' में लहरों के समूह का एक दूसरे को धकेलना, उठकर गिर पड़ना, 'बढ़ो – बढ़ो' कहने का शब्द मिलता है ---।[१]

निराला जी शब्दों के संगीत पर विशेष बल देते थे। इसीलिए उन्होंने स्वरों तथा व्यंजनों के अनुप्रासों पर विशेष ध्यान दिया है। उनके लिए प्रत्येक शब्द ध्वनि बंध से बंधा हुआ होता था।

इस प्रकार छायावादी काव्य में शब्दों के अर्थ विवेक विशेष ध्यान है।

४ – ग्राम्य शब्दों का प्रयोग :-

यद्यपि छायावादी कवि नागर सभ्यता के थे, परन्तु नवता और भाषा व्यापकता के लिए ग्राम्य शब्दों को भी अंगीकार करते थे। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं:-

१ – न हो भीड़ का अब रेला – झरना, पृष्ठ १८।

२ – ताराओं की पांति घनी रे – लहर, पृष्ठ १४।

---

१ – पल्लव – प्रवेश : पृष्ठ ३०।

३ - विजित - मन - मुदित सहेलरियां - परिमल, पृष्ठ १०६ ।
४ - चल रहा लकुटिया टेक - अपरा, पृष्ठ ६७ ।
५ - संभालो जीवन खे वन हार - परिमल, पृष्ठ ३० ।
६ - प्यालों में फूलों के - पल्लव, पृष्ठ १४ ।
७ - उतरो अब पलकों में वाहन - (यामा, पृष्ठ २०३ ।
८ - आंसू लेते वे पद पखार - यामा, पृष्ठ ६५ ।
९ - आहटहीन चला जब होले - दीपशिखा, गीत सं० ४७ ।

इस प्रकार इस काव्य में ग्राम्य शब्दों की भी स्वीकृति है ।

५ - छायावादी काव्य भाषा में 'गुण' :-

भारतीय काव्य शास्त्र के प्रथम आचार्य भरत ने अपने नाट्य शास्त्र में १० गुणों का उल्लेख किया है,[१] परन्तु अधिकांश आचार्यों ने तीन काव्य गुणों को ही प्राधान्य दिया है - माधुर्य, प्रसाद और ओज ।[२] छायावादी काव्य में ये तीनों क्यों जाते हैं ।
माधुर्य - चित्त को प्रसन्न और द्रवीभूत करने वाले गुण को माधुर्य कहते हैं । इसमें -

(१) - ट, ठ, ड, ढ, को छोड़कर क से म तक वर्ण प्रयुक्त होते हैं ।
(२) ङ, ञ, ण, न, म से युक्त ह्रस्व र और ण का प्रयोग होता है ।
(३) अल्प समास या समास होना भाषा होती है ।
(४) पद या रचना में कोमलता का संवरण होता है ।

कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं :-

(१) सुना जब मनु ने मधु गुंजार
मधुकरी का सा जब सानन्द
किए मुख नीचा कमल समान
प्रथम कवि के ज्यों सुन्दर छन्द (कामायनी)

१ - भारतीय काव्यशास्त्र की परम्परा : सं० डा० नगेन्द्र : द्वि०सं० पृष्ठ २७ ।
२ - काव्य प्रकाश : मम्मट (१९२१ वाला चतुर्थ संस्करण), पृष्ठ ४७७ ।

(२) तुम तुंग हिमालय शृंग
और मैं चंचल गति सुर सरिता । (अपरा)

(३) बिन्दु में थी तुम सिन्धु अनन्त
एक सुर में समस्त संगीत, (पल्लव)

ओज - मन को ओज, तेज, दीप्ति से भर देने वाले वर्णों, पदों या वाक्यों का जहां प्रयोग हो वहां ओज गुण होता है इसमें द्वित्व वर्णों, संयुक्त वर्णों, र के संयोग, ट, ठ, ड, ढ आदि कठोर वर्णों और समास बहुला पदावली का प्रयोग होता है । छायावादी काव्य की कुछ पंक्तियां यहां उदाहृत की जाती हैं :-

(१) अहे वासुकि सहस्त्र फन !
लक्ष अलक्षित चरण तुम्हारे चिन्ह निरंतर
छोड़ रहे हैं जग के विक्षत वक्षः स्थल पर
- - - - - - - - - - - - - - - - -
अखिल विश्व ही विचर,
वक्र कुण्डल
दिङ्मण्डल । (पल्लव)

(२) दिग्दाहों से धूम उठे, या
जलधर उठे क्षितिज तट के । (कामायनी)

(३) शत घूर्णावर्त, तरंग - भंग, उठते पहाड़,
जलराशि; राशि जल पर चढ़ता खाता पछाड़
तोड़ता बंध - प्रतिसंध धरा हो स्फीत वक्ष
दिग्विजय अर्थ प्रतिपल समर्थ बढ़ता सक्षम । (अपरा)

प्रसाद गुण - जो श्रवण मात्र चित्त में व्याप्त हो जाय या समझ में आ जाय वही प्रसाद गुण है । इसमें सरल सुबोध शब्दों की योजना होती है :

(१) वह आता
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता
पेट पीठ दोनों मिलकर हैं एक

चल रहा लकुटिया टेक - - - (अपरा)

(२) भरा था मन में नव उत्साह
सीख लूं ललित कला का ज्ञान
इधर रह गन्धर्वों के देश
पिता की हूं प्यारी संतान । (कामायनी)

६ - छायावादी काव्य में वृत्तियां :-

छायावादी कविता की दृष्टि वृत्तियों पर नहीं रही है, पर इसका अर्थ यह नहीं कि वे उसमें हैं ही नहीं । कुछ प्रमुखवृत्तियां, अत्यन्त में, यहां दी जा रहीं हैं :-

क - उपनागरिका वृत्ति (वैदर्भी रीति) -

सरलपन ही था उसका मन
निरालापन था आभूषण,
कान से मिले अजान नयन
सहज था सजा सजीला तन । (पल्लव)

ख - परुषावृत्ति (गौड़ी रीति) -

यह तेरी रण - तरी
भरी आकांक्षाओं से,
घन, भेरी गर्जन से सजग, सुप्त अंकुर
उर में पृथ्वी के, आशाओं से
नव जीवन की, उनंचा कर सिर,
ताक रहे हैं, ए विप्लव के बादल !
फिर फिर । (अपरा)

(ग) कोमला वृत्ति (पांचाली रीति) -

मधुरिमा में अपने ही मौन
एक सोया सन्देश महान,
सजग हो करता संकेत
चेतना मचल उठी अनजान (कामायनी)

७ - शब्द शक्तियां :-

ये तीन हैं - अभिधा, लक्षणा और व्यंजना । छायावादी कविता की दृष्टि तीनों पर थी परन्तु मुख्यत: थी लक्षणा की ।

(क) अभिधा - जहां किसी शब्द का सीधा सा-या, सरलतम एवं स्पष्ट अर्थ हो । देव ने " अभिधा उत्तम काव्य है " द्वारा तथा आचार्य शुक्ल ने इसकी श्रेष्ठता द्वारा इसका महत्व प्रतिपादन किया । यहां इसका एक उदाहरण अलम् होगा -

वीरता की गोद पर
मोद भरने वाले शूर तुम,
मेधा के महान,
राजनीति में हो अद्वितीय जयसिंह
सेवा हो स्वीकृत
हे नमस्कार, साथ ही
असीस भी है बार - बार ! (अपरा:पृष्ठ ७६)

(ख) लक्षणा शक्ति - मुख्यार्थ की बाधा होने व रूढ़ि या प्रयोजन व शात् जिस शब्द शक्ति के द्वारा मुख्य अर्थ से संबंध रखने वाला अन्य अर्थ लक्षित हो उसे लक्षणा कहते हैं । छायावादी काव्य में इसका बाहुल्य है । इसके अनेक भेद - प्रभेदों में कुछ वर्णन यहां दिया जाता है ।

सारोपा गौणी लक्षणा -

(क) बीती विभावरी जागरी
अम्बर - पनघट में डुबो रही ताराघट उषा नागरी - प्रसाद

(ख) जब कामना सिन्धु तट आई, ले संध्या का तारा दीप । - प्रसाद

(ग) सिकता की सस्मित सीपी पर मोती की ज्योत्स्ना रही विचर - पंत

(घ) तेरा मुख सहास अरुणोदय, परछाईं रजनी विषादमय - महादेवी

साध्यवसाना गौणी लक्षणा -

पगली हां सभाल ले कैसे
छूट पड़ा तेरा अंचल ।
देख बिखरती है मणिराजी
अरी उठा बेसुध चंचल । - प्रसाद

प्रयोजनवती लक्षणा -

बाड़व ज्वाला सोती थी
इस प्रणय - सिन्धु के तल में - प्रसाद

रूढ़ा लक्षणा -

ह हा मेवाड़ के पवित्र बलिदान का
अर्जित आलोक
आंख खोलता था सबकी - (प्रसाद : लहर)
यहां मेवाड़ का अर्थ रूढ़ अर्थ में मेवाड़वासी है ।

शुद्धलक्षणा -

मिला कहां वह सुख जिसका मैं
स्वप्न देखकर जाग गया
आलिंगन में आते - आते
मुसकरा कर जो भाग गया ।

इसी तरह समस्त छायावादी काव्य में लक्षणा के अनेकानेक उदाहरण भरे पड़े हैं ।

(ग) - व्यंजना शक्ति :- अपने - अपने अर्थ का बोध कराकर अभिधा और लक्षणा शक्तियां जब विरत हो जाती हैं, तब जिस शक्ति द्वारा व्यंग्यार्थ का बोध होता है उसे व्यंजना कहते हैं । डा० भोला शंकर व्यास ने इसकी व्याख्या प्रस्तुत की है । व्यंजना के मुख्य दो भेद हैं :- शाब्दी और आर्थी । इनके अनेक भेद हैं । यह विस्तारभय से केवल ही उदाहरण दिये जा रहे हैं :-

शाब्दी व्यंजना -

जल उठा स्नेह दीपक सा,
नवनीत हृदय था मेरा ।
अवशेष धूम रेखा से
चित्रित कर रहा अंधेरा । (आंसू)

यहां विरह - जन्य नैराश्य - निविड़ व्यंग्य है ।

आर्थी व्यंजना -

आज रहने दो यह गृह काज
प्राण रहने दो यह गृह काज !
- - - - - - - - - - -
आज चंचल चंचल मन - प्राण
आज रे शिथिल शिथिल तन - भार - - -

आज दो प्राणों का दिन - मान
आज संसार नहीं संसार
आज क्या प्रिये सुहाती लाज !
आज रहने दो सब गृह काज । (पंत)

यहां व्यंग्यार्थ से मिलनोत्कंठा व्यक्त है

८ - छायावादी काव्य की लय, वर्ण, शब्द और वाक्य योजना :-

लय - योजना - छायावादी काव्य ने भाषा को एक लय (कैडेन्स) प्रदान किया । द्विवेदी युगीन नीरसता की जगह एक सरसता आई । पंत जी का दृष्टिकोण यहां द्रष्टव्य है :-

" भाषा का और मुख्यत: कविता की भाषा का प्राण राग है । राग ही पंखों की अबाध उन्मुक्त उड़ान में लयमान होकर कविता सान्त के अनन्त से मिलती है । राग ध्वनि लोक निवासी शब्दों के हृदय में परस्पर स्नेह तथा ममता का संबंध स्थापित करता है । राग का आकर्षण है, यह वह शक्ति है जिसके विद्युत्स्पर्श से खिंचकर हम शब्दों की आत्मा तक पहुंचते हैं । जिस प्रकार शब्द एक ओर व्याकरण के कठिन नियमों से बद्ध हैं, उसी तरह दूसरी ओर राग के आकाश में पक्षियों की तरह स्वतंत्र भी होते हैं - - - -।"[१] इस प्रकार पंत जी ने राग को भाषा का प्राण घोषित किया । इस राग के तीन मुख्य उपकरण हैं - वर्ण, शब्द और वाक्य ।

वर्ण - योजना - पंत जी ने लिखा है कि काव्य संगीत के मूल तत्व स्वर हैं, व्यंजन नही तथा भावना की अभिव्यक्ति में स्वर संगीत ही प्रधान रूप से सहायक होते हैं । भावना का रूप स्वरों के उचित सम्मिश्रण तथा उनकी यथोचित मैत्री पर ही विशेष निर्भर

---

१ - पंत : पल्लव प्रवेश; पृष्ठ २८, २९ ।

हैं । भावों के अनुरूप विस्तार, संकोच, त्वरा, गति आदि का ध्यान रखते हुए पंत जी ने वर्णों का विधान किया है । कोमल वर्णों की सृष्टि देखें -

(क) हमें उड़ा ले जाता द्रुत
दल बल युत घुस बातुल चोर । (पल्लव)

परुष भावों की अभिव्यंजना ` परिवर्तन में देखते बनती है । पंत को वर्णों से मोह पैदा हो गया था । उन्हें सा, सी, रे आदि वर्ण बहुत प्रिय थे । संस्कृत के ` ण ` की जगह ` न ` का प्रयोग मिलता है ।

शब्द योजना - जो कवि शब्दों के अन्तस्थल में जितना ही प्रविष्ट होगा, उसका काव्य उतना ही महनीय होगा । छायावादी काव्य में शब्द सौष्ठव और उनकी अर्थमत्ता देखते ही बनता है । ` पल्लव ` की भूमिका में पंतजी ने इस विषय पर पर्याप्त विचार किया है । ` निराला, पंत जैसे समर्थ कवियों को यह बहुत अच्छी तरह ज्ञात था कि शब्द काव्य भाषा और स्वयं काव्य के प्राणाधार होते हैं और जिस प्रकार आर्केस्ट्र में प्रत्येक वाद्य का योग होता है, उसी प्रकार काव्य भाषा में भी प्रत्येक शब्द का अपना निश्चित उपयोग होता है । `[१]

वाक्य - योजना - भाषा की अंतिम इकाई है वाक्य । वास्तव में भाषा में जो लय (रिद्धेन्स) होता है वह काक्य द्वारा अभिव्यक्त होता है । छायावादी कवि ने भाषा की लयात्मकता के लिए नवीन वाक्य विधान किया जो नवीन अर्थों की सृष्टि कर सके । परन्तु इस चेष्टा में उनकी भाषा दुरूह हो गयी । जन - सामान्य की भाषा से बहुत दूर हो गयी और उस पर अस्पष्टता का आरोप लगा ।

---

१ - छायावादी काव्य : डा ० कृष्ण चन्द्र वर्मा : पृष्ठ २६४ ।

६ - छायावादी काव्यभाषा में पुनरुक्ति और शब्द अपव्यय पुनरुक्ति :-

क - नव गति, नवलय, तालछन्द नव,
नवल कंठ, नव जलद - मंद्र रव - (निराला : गीतिका : पृष्ठ ३)

ख - झुक झुक झुक सौरभ के भार - (पल्लविनी, पृष्ठ १५८)

ग - छिल छिल कर छाले फोड़े
मल मल कर मृदुल चरण से
धुल धुल कर वह रह जाते
आंसू करुणा के जल से - (आंसू पृष्ठ ११)

शब्द अपव्यय -

क - अम्बर पट मींजा होता - प्रसाद
ख - प्रमुदित मोदित मधुमय हो - पंत
ग - इन नयनों का अश्रुबीर - महादेवी

व्याकरण का उल्लंघन -

पंत जी लिखते हैं :-

मैंने अपनी रचनाओं में, कारण वश, जहां कहीं भी व्याकरण की लोहे की कड़ियां तोड़ी है, वहां उसके विषय में भी लिख देना उचित समझता हूं। मुझे अर्थ के अनुसार ही शब्दों को स्त्रीलिंग, पुलिंग मानना अधिक उपयुक्त लगता है। अन्यत्र भी इसी प्रकार कहीं - कहीं मैंने शब्दों को अपनी आवश्यकतानुसार बदल लिया है।

अंत में व्याकरण से अपनी इस (इडियासेनक्रेसी (स्वभाव - वैषम्य) के लिये क्षमा प्रार्थना कर मैं विदा होता हूं।[१] कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं :-

१ - कितनी कल्पनाओं का मधुर - महादेवी (वचन दोष)

२ - सजग शशक नभ की चरते - पंत (विभक्ति दोष)

३ - कितने बार पुकारा - निराला -(लिंग-दोष)

इसी प्रकार संधि, संज्ञा और सर्वनाम के भी दोष मिलते हैं।

निष्कर्ष :

समासतः छायावादी काव्य की भाषा उदारतावादी, अन्तर्मुखी, विषयी प्रधान, शास्त्रीय बंधनों से स्वच्छन्द, भावाभिव्यंजक एवं गतानुगतिका से मुक्त थी। परिणामतः छायावादी काव्य में भाषा की व्यंजना शक्ति में अभूतपूर्व वृद्धि हुई। भाषा का एक मसृण और नवीन रूप यहां दृष्टिगत होता है। छायावादी भाषा में लाक्षणिकता का प्राधान्य है। यहां भाषा संबंधी विविध प्रयोग हुए और पतझड़ की भाषा देखते देखते कुसुमित शब्दों से लद गयी।

---

१ - पंत : पल्लव (विज्ञापन), ८वां संस्करण, पृष्ठ १४।

(२) अलंकार शिल्प :

सैद्धान्तिक दृष्टि :-

श्री जयशंकर प्रसाद ने ' काव्य कला तथा अन्य निबंध ' में अलंकार विषयक अपने मत को व्यक्त किया है। उनके ' छायावाद ' निबंध से पता चलता है कि वे संस्कृत के ध्वनि और वक्रोक्ति सम्प्रदायों से प्रभावित थे। डा० नगेन्द्र का मत है कि वे ' कुन्तक की वक्रता को वास्तविक काव्य का आन्तारक गुण मानते थे।'[१] परन्तु जयशंकर प्रसाद के काव्य सिद्धान्तों का पूर्ण आकलन करने पर हम पाते हैं कि यद्यपि वे प्राचीन काव्य-सिद्धान्तों का पुनराख्यान करते हैं पर वे परम्परावादी नहीं थे। उन्होंने परम्परानुवर्तन एक मर्यादा के भीतर हो किया है और उसे नवीन परिप्रेक्ष्य में। उन्होंने इस तथ्य का स्पष्टीकरण भी किया है :-

' उस अनुभूति और अभिव्यक्ति के अन्तरालवर्ती संबंध को जोड़ने के लिए हम चाहें तो कला का नाम दे सकते हैं, और कला के प्रति अधिक पक्षपातपूर्ण विचार करने पर यह कोई कह सकता है कि अलंकार, वक्रोक्ति और रीति इत्यादि में कला की सत्ता मान लेनी चाहिए, किन्तु मेरा मत है कि यह सब समय - समय की मान्यता और धारणाएं हैं। प्रतिभा का किसी कोशल विशेषपर कभी अधिक झुकाव हुआ होगा। इसी अभिव्यक्ति के बाह्य रूप को कला के नाम से काव्य में पकड़ रखने की साहित्य में प्रथा सी चल पड़ी है।'[२]

स्पष्ट है प्रसाद जी ने अपनी अलंकार दृष्टि को किसी काव्य सिद्धान्त या काव्य - सम्प्रदाय में बद्ध नहीं होने दिया है। उन्होंने अलंकार, वक्रोक्ति, रीति आदि को समय विशेष की कलात्मक मान्यता या धारणा कहा है।

---

१ - भारतीय काव्य शास्त्र की भूमिका : डा० नगेन्द्र : पृष्ठ ४५५।
२ - भारतीय काव्य शास्त्र की परम्परा : डा० नगेन्द्र : पृष्ठ ५३६ - ३७।

निराला भी प्रसाद की तरह अलंकारों के क्षेत्र में स्वच्छन्द हैं। "हिन्दी में कला के विवेचन में प्रायः यही हाल रहा है। अधिकांश तो उत्प्रेक्षा और रूपक को ही समझते हैं।"[१] निराला जी यह नहीं मानते कि कला रस, ध्वनि, अलंकार आदि की अलग अलग सीमाओं में आबद्ध हो। वह तो इन सभी उपादानों के समन्वय में है। अलंकार को वे कला के एक उपादान के रूप में स्वीकार करते हैं। "कला केवल वर्ण, शब्द, छन्द, अनुप्रास, रस, अलंकार या ध्वनि की सुन्दरता नहीं किन्तु इन सभी से सम्बद्ध सौन्दर्य की पूर्ण सीमा है, पूरे अंगों की सत्रह साल की सुन्दरी की आंखों की पहचान की तरह - देह की क्षीणता पीनता में तरंग-सा उतरती चढ़ती हुई, भिन्न वर्णों की बनी वाणी में घुलकर क्रमशः मन्द मधुरतर होकर लीन होती हुई ----।"[२] इस प्रकार निराला जी को कला में केवल अलंकार, रस या ध्वनि के प्रयोग से वितृष्णा हो चुकी है। उनका तो स्पष्ट मत है कि प्रयत्न साध्य अलंकार योजना से काव्य सौष्ठव हीन और निष्प्रभ हो जाता है। इस विचारक भूमि पर वे अलंकार को आवश्यक नहीं मानते :-

"अलंकार लेश रहित, श्लेष - हीन
शून्य विशेषणों से -
नग्न नीलिमा सी व्यक्त
भाषा सुरक्षित वह वेदों में आज भी (परिमल)

अतः अलंकारों के क्षेत्र में निराला जी परम्पराभुक्त हैं।

पंत जी ने "पल्लव-प्रवेश" अपने अलंकार - संबंधी मत की चर्चा की है। पूववर्ती हिन्दी कविता की रूढ़िबद्ध कृत्रिम आलंकारिकता पर कटाक्ष करते हुए वे कहते हैं कि:-

भाव और भाषा का ऐसा शुष्क प्रयोग, राग और छन्दों की ऐसी एक स्वर रिमझिम, उपमा और उत्प्रेक्षाओं की ऐसी दादुरावृत्ति, अनुप्रास एवं तुकों की ऐसी

---

१ - प्रबन्ध - प्रतिमा : प्र० सं०, पृष्ठ २७३।
२ - प्रबन्ध - प्रतिमा : प्र० सं०, पृष्ठ २७२।

अश्रान्त उपलवृष्टि क्या संसार के और किसी साहित्य में मिल सकती है।"[१] पंत जी के अनुसार अलंकार भावाभिव्यक्ति में सहायक होते हुए भाव और कला दोनों के अभिन्न अंग बन जाते हैं। सायास - प्रयुक्त अलंकार कला को निष्प्रभ कर देते हैं। " अलंकार केवल वाणी की सजावट के लिए नहीं, वे भाव की अभिव्यक्ति के विशेष द्वार हैं। भाषा की पुष्टि के लिए, राग की परिपूर्णता के लिए आवश्यक उपादान हैं, वे वाणी के आचार, व्यवहार, रीति नीति हैं, पृथक स्थितियों के पृथक् स्वरूप, भिन्न भिन्न अवस्थाओं के भिन्न चित्र हैं। जैसे वाणी की झंकारें विशेष घटना से टकराकर फेनाकार हो गयी हों, विशेष भावों के झोंके खाकर बाल लहरियों, तरुण - तरंगों में फूट गयी हों, कल्पना के विशेष बहाव में पड़ आवर्तों में नृत्य करने लगी हों। वे वाणी के हास, अश्रु, स्वप्न, पुलक, हाव- भाव हैं। जहां भाषा की जाली केवल अलंकारों के चोखटे में फिट करने के लिए बुनी जाती है, वहां भावों की उदारता शब्दों की कृपण - जड़ता में बधकर से नापति के धारा और सूम की तरह " इकसार " हो जाती है।"[२] इसी प्रसंग को आगे बढ़ाते हुए वे कहते हैं कि "--------कविता में भी विशेष अलंकारों, लक्षणा, व्यंजना आदि विशेष शब्द शक्तियों तथा विशेष छन्दों के सम्मिश्रण और सामंजस्य से विशेष भाव की अभिव्यक्ति करने में सहायता मिलती है।"[३] अलंकार भावाभिव्यक्ति के आवश्यक उपादान हैं। भावाभिव्यक्ति से स्वतंत्र होकर वे काव्य में अराज कता को ही सृष्टि करते हैं। " उपमा उपमा के लिए, अनुप्रास अनुप्रास के लिए, श्लेष, अपन्हुति, गूढोक्ति आदि अपने अपने लिए हो जाते हैं- ----- काव्य के साम्राज्य में अराजकता पैदा हो जाती है, कविता साम्राज्ञी हृदय के सिंहासन से उतार दी जाती है ----- और सारा साम्राज्य नष्ट - भ्रष्ट हो जाता है।"[४] यही बात यहां भी कही गयी है :-

" तुम वहन कर सको जन मन में मेरे विचार,
मेरी वाणी, चाहिए तुम्हें क्या अलंकार। (ग्राम्या, पृष्ठ १०३)

---

१ - पल्लव - प्रवेश : आठवां सं०, पृष्ठ २२।
२ - पल्लव - प्रवेश : दवां सं०, पृष्ठ ३२।
३ - तदेव
४ - तदेव

अस्तु, पंतजी अलंकार को भावों का वाहक एक उपकरण मानते हैं न वे सायास नहीं अनायास आने चाहिए ।

महादेवी वर्मा ने अलंकारों के विषय में स्पष्ट चर्चा नहीं की है । उनकी कविता तथा कला विषयक अवधारणाओं से कुछ अनुमान लगाया जा सकता है । कविता के विषय में वे कहती हैं कि :-

" धुंधले अतीत भूत से लेकर वर्तमान समय तक और " वाक्यं रसात्मकं काव्यम् " से लेकर आज के शुष्क बुद्धिवाद तक जो कुछ काव्य के रूप और उपयोगिता के संबंध में कहा जा चुका है, वह परिमाण में कम नहीं, परन्तु अब तक मनुष्य के हृदय का पूर्ण परितोष न हो सका और न उसकी बुद्धि का समाधान । यह स्वाभाविक भी है क्योंकि प्रत्येक युग अपनी समस्याओं को लेकर आता है जिनके समाधान के लिए नई दिशाएं खोजती हुई मनोवृत्तियाँ उस युग के काव्य और कलाओं को एक विशिष्ट रूप रेखा देती रहती हैं । मूल तत्व न जीवन के कभी बदलते हैं और न काव्य के । "[१]

स्पष्ट है महादेवी जी काव्य के मूल तत्वों को जीवन की तरह शाश्वत मानती हैं । अनुमानत: वे अलंकारों को काव्य का वाह्य उपकरण ही मानती हैं । यद्यपि उपर्युक्त उद्धरण में अलंकारों का स्पष्ट उल्लेख नहीं है फिर भी प्रतीत होता है कि वे काव्य के बाध्य उपकरणों में अलकारों को लेती हैं । बाह्य उपकरण समयानुसार परिवर्तित होते रहते हैं । अत: अलंकारों का भी नवीन दिशा में गमन और परिवर्तन स्वाभाविक है । इस प्रकार महादेवी जी अलंकारों के प्रति नव्य दृष्टि रखती हैं ।

उपर्युक्त चारो कवियों के विचारों के बाद हम यही कह सकते हैं कि छायावाद अलंकारों के क्षेत्र में परम्परा पालन नहीं करता । यहां अलंकारों का कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है, वे हैं तो भावों के वाहक और अभिव्यक्ति पुष्टिकर्ता । यहां अलंकारों की शास्त्रीयता का व्यामोह नहीं है और नवीन भावकोष में नवीन अलंकारों का सृजन है । यहां काव्य और अलंकार का संबंध अंगी और अंग का है ।

---

१ - महादेवी का विवेचनात्मक गद्य, सं0 गंगा प्रसाद पांडेय, पृष्ठ ४८-४६ ।

छायावादी काव्य में अलंकार व्यवहार :-

अलंकारों का व्यावहारिक प्रयोग के क्षेत्र में छायावादी काव्य की दृष्टि भारतीय और पाश्चात्य दोनों ओर रही है । यहां हम देखेंगे कि कहां तक ये कवि परम्परानुवर्तन किए हैं और कहां तक उसका परित्याग ।

शब्दालंकार - शब्दालंकार में प्रमुख कुछ अलंकारों का वर्णन यहां है -

अनुप्रास - (१) नेत्र निमीलन करती मानो
प्रकृति प्रबुद्ध लगी होने । (कामा० पृष्ठ २३)

(२) सित सरोज पर क्रीड़ा करता
जैसे मधुमय पिंग पराग । (कामा०, पृष्ठ २३)

(३) विजन - वन - वल्लरी पर
सोती थी सुहागभरी - स्नेह - स्वप्न-मग्न
अमल - कोमल तनु - तरुणी (अपरा, पृष्ठ १४)

यमक - (१) ग्रान्थि बन्धन इस सुनहली ग्रान्थि में - (पल्लविनी)
(२) गगन घन घन धार रे कह, - (गीतिका)
(३) जगमय जग कर दे । - (गीतिका)

श्लेष - (१) विश्व के वारिधि जीवन - (गीतिका)
(२) जो घनीभूत पीड़ा थी
मस्तक में स्मृति सी छायी
दुर्दिन में आंसू बनकर
वह आज बरसने आई । - (आंसू)

पुनरुक्ति - (१) बन बन उपवन, छाया उन्मन उन्मन गुंजन - (गुंजन)
(२) तप रे मधुर मधुर मन - (पल्लविनी)
(३) लो चढ़ा तार - लो चढ़ा तार (तुलसीदास)

पुनरुक्तिवदाभास - जहां भिन्न अर्थ वाले पद या शब्द देखने में समानार्थी प्रतीत हों, वहां यह अलंकार होता है, जैसा -

प्राप्त ही तो कहलायी मात
पयोधर बने उरोज उदार । (पल्लव)

यहां ' पयोधर ' व ' उरोज ' देखने में समानार्थी हैं परन्तु इनके अर्थों में प्रयाप्त अंतर है ।

अर्थालंकार - अनेक भेद - प्रभेदों के बाद भी इनके दो भेद हैं सादृश्यमूलक और विरोधमूलक । सादृश्यमूलक में उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अन्योक्ति, सनेह, भ्रान्तिमान, दृष्टान्त (उदाहरण) आदि हैं । विरोधमूलक में विरोधाभास, विभावना और असंगति आदि प्रमुख हैं ।

उपमा - छायावादी काव्य में पूर्वयुगों की तरह स्थूल नहीं हैं । वर्ण्य की सूक्ष्मता के साथ वे भी सूक्ष्म होते गये हैं । उदाहरण के लिए छाया जैसी स्थूल के लिए पंत जी की सूक्ष्म उपमाएं यहां दर्शनीय है :-

' गूढ कल्पना सी कवियों की
अज्ञाता के विस्मय सी
ऋषियों के गम्भीर हृदय सी
बच्चों के तुतले भय सी । ' (पल्लव)

छायावादी कवियों ने मूर्त की अमूर्त से और अमूर्त की मूर्त से उपमाएं दी हैं

' गिरिवर के उर से उठ उंठकर
उच्चाकांक्षाओं से तरुवर
हैं झांक रहे नीरव नभ पर
अनिमेष, अटल कुछ चिन्ता पर । (उच्छ्वास)

और भी -

वह इष्ट देव के मंदिर की पूजा सी
वह दीपशिखा सी शान्तिभाव में लीन
वह क्रूर काल-ताण्डव की स्मृति रेखा सी - (अमरा)

अमूर्त के लिए मूर्त उपमानों का प्रयोग भी अवलोकनीय है :-

१ - जल उठा स्नेह दीपक - सा नवनीत हृदय थाकोरा
अवशेष घूम रेखा से चित्रित कर रहा अँधेरा । (आंसू)

२ - सिसके, अस्थिर मानस से
बाल बादल सा उठकर आज
सरल अस्पष्ट उच्छ्वास ।

यहां विरह - दशा को घूम रेखा का चित्र और उच्छ्वासों को शिशु मेघ कहना अमूर्त के लिए मूर्त प्रयोग है ।

मूर्त प्रस्तुतों के लिए मूर्त अप्रस्तुतों का विधान भी छायावादी काव्य में मिलता है : -

१ - सुना जब मनु ने मधु गुंजार, मधुकरी का सा जब आनन्द ।
किए मुख नीचा कमल समान, प्रथम कवि के ज्यों सुन्दर छन्द । (कामा०)

२ - मेमनों से मेघों के बाल - (पल्लव)

यहां श्रद्धा का स्वर मधुकरी के स्वर से और छोटे - २ मेघ खण्डों की उपमा मेमनों से दी गयी है । अमूर्त उपमेय के लिए अमूर्त उपमानों की सृष्टि भी छायावादी काव्य में हुई है :-

निकल रही थी मर्म वेदन
करुणा विकल कहानी -सी
वहां अकेली प्रकृति सुनहरी
हंसती - सी पहिचानी सी । (कामा०)

यहां मर्म वेदना को विकल कहानी कहना अमूर्त उपमेय के लिए अमूर्त उपमान का प्रयोग है ।

छायावादी कवियों ने उपमानों का प्रयोग सदैव अपनी भावना को रंग में रंगकर किया है। छायावादी कविता में औपम्य विधान प्रायः प्रभाव - साम्य के आधार पर किया जाता है, रूप अथवा गुण के आधार पर नहीं। यह प्रभाव - साम्य, वास्तव में, उपमेय में भावना के आरोप द्वारा कल्पित किया जाता है अर्थात् कवि उपमेय के लिए जो उपमान लाता है वे उपमेय के प्रति उसकी भावना के प्रतीक होते हैं, किसी बाह्य रूप - गुणादि की समानता से उनका कुछ संबंध नहीं होता। उदाहरण के लिए :-

शून्य नभ पर उमड़ जब दुख भार सी
नेश तम में, सघन छा जाता घटा,
बिखर जाती जुगनुओं की पांति सी
तब चमक जो लोचनों को मूंदता,
तड़ित की मुसकान में वह कौन है ? (रश्मि)

यहां कवियित्री को प्राकृतिक उपकरणों के बीच ब्रह्म या ईश्वर का साक्षात्कार हुआ, इसलिए तड़ित की चमक में भी वह उसी की छटा देखती है। इसीप्रकार किरण के लिए पृथ्वी पर प्रार्थना सदृश्य झुकी हुई, मधुर मुरली सी मौन आदि कहा गया :-

धरा पर झुकी प्रार्थना सदृश
मधुर मुरली सी अधर भी मौन
किसी अज्ञात विश्व की विकल
वेदना दूती सी तुम कौन ?

उपमा के रूप -

पूर्णोपमा -

गोरे अंगों पर सिहर - सिहर, लहराता तार तरल सुन्दर
चंचल अंचल सा नीलाम्बर ।
साड़ी की सिकुड़न सी जिस पर, शशि की रेशमी विभा से भर
सिमटी है वर्तुल, मृदुल लहर । (गुंजन)

लुप्तोपमा -

तुम्हारी आंखों का आकाश, सरल आंखों का नीलाकाश (गुंजन)

मालोपमा -

क - कोमल किसलय के अंचल में
नन्हीं कलिका ज्यों छिपती सी
गोधूली के धूमिल पट में
दीपक के स्वर में दिपती सी ।
मंजुल स्वप्नों की विस्मृति में
मन का उन्माद विखरता ज्यों
सुरभित लहरों की छाया में
बुल्ले का विभव विखरता ज्यों (कामा०)

ख - तरुवर के छायानुवाद सा, उपमा सी, भावुकता सी,
अविदित भावाकुल भाषा सी, कटी छंटी नव कविता सी (पल्लव)

विरीतोपमा -

तुम प्रेममयी के कण्ठ हार
मैं वेणी काल ---नागिनी,
तुमकर पल्लव विरह - रागिनी ।
तुम पथ हो, मैं हूं रेणु,
तुम हो राधा के मन - मोहन
मैं उन अधरों की वेणु । (अपरा)

नवीन उपमाएं - छायावादी कवियों की अलंकारों के प्रति नवीन दृष्टि थी। उन्होंने परम्परागत अलंकारों को नवता प्रदान की। उपमा के क्षेत्र में भी उन्होंने नवता की सृष्टि की। छायावादी कवियों की ये नवीन उपमाएं हैं :- प्रतिद्वन्द्वात्मक उपमा, मिश्रामिश्र उपमा, संकेतोपमा आदि। पूर्वयुगीन काव्यों में ऐसे अलंकार दुर्लभ हैं।

१ - प्रतिद्वन्द्वात्मक उपमा - जहां एक से अधिक समान रूप गुण शील वाली वस्तुओं में द्वन्द्व-प्रतिद्वन्द्व भाव रहता है या कवि या आश्रय के सामने उनमें से एक को चुनने की समस्या आ खड़ी होती है :-

देखूं हिम - हीरक हंसते, हिलते नीले कमलों पर
या मुरझाई पलकों से, झरते आंसू कण देखूं।' (यामा)

२ - मिश्रामिश्र उपमा - इसके दो रूप हैं - एक आमिश्र (सरल) और दूसरा मिश्र (जटिल)। छायावादी कविता में दोनों का प्रयोग हुआ है, परन्तु अमिश्र का अधिक। अमिश्र उपमा का एक उदाहरण लें :-

उठ उठ री लघु - लघु लोल - लहर
करुणा की नव अंगड़ाई सी
मलयानिल की परछाईं सी - (लहर, पृष्ठ ६)

मिश्र उपमा -

मेरी लहरीली, नीली, अलकावलि समान
लहरें उठती थीं मानों चूमने को मुझको। (लहर, पृष्ठ ५६)

संकेतोपमा - जहां उपमा अलंकार तो हो परन्तु सहसा यह निर्णय न हो सके कि यहां उपमालंकार है, यथा -

भारत के उर के राजपूत
उड़ गए आज वे देव दूत,
जो रहे शेष नृप वेष, सूत वन्दी गण (तुलसीदास : निराला)

विपरीतोपमा -

अवनि अम्बर की रुपहली सीप में, सरल मोती-सा जलधिजब कांपता
तैरते थे मृदुल हिम के पुंज से, ज्योत्स्ना के रजत पारावार में । (यामा)

उत्प्रेक्षा -

१ - स्वर्ण शालियों की कलमें थीं
दूर-दूर तक फैल रहीं ।
शरद इन्दिरा के मन्दिर की
मानो कोई गैल रही । (कामायनी)

२ - निराकार तम मानों सहसा
ज्योति पुंज में हो साकार
बदल गया द्रुत जगत जाल में
धरकर नाम रूप नाना (पल्लविनी, पृष्ठ २३)

रूपक -

(१) सांग रूपक -

बीती विभावरी जाग री
अम्बर - पनघट में डुबो रही
तारा घट उषा नागरी - (लहर, पृष्ठ १६)

(२) निरंग रूपक -

ओ चिन्ता की पहली रेखा
अरी विश्व वन की व्याली
ज्वालामुखी-स्फोट के भीषण
प्रथम कम्प सी मतवाली - (कामायनी)

इसी प्रकार छायावादी काव्य में भारतीय अलंकारशास्त्र के रूपकातिश्योक्ति, दृष्टान्त, सन्देह, अपह्नुति, विरोधाभास, विभावना, असंगति, सम्भावना, परिकर, सहोक्ति, तुल्ययोगिता, विषम, व्याजस्तुति आदि भी ढूँढे जा सकते हैं ।

(ख) पाश्चात्य अलंकारों के प्रति दृष्टि :-

छायावादी कवियों की दृष्टि केवल भारतीय काव्यशास्त्र में वर्णित अलंकारों के प्रति ही नहीं रही है अपितु पाश्चात्य अलंकारों के प्रति भी । पाश्चात्य अलंकारों में मुख्यत: मानवीकरण, विशेषण विपर्यय और ध्वन्यर्थ व्यंजना को ही इन कवियों ने स्वीकार किया ।

१ - मानवीकरण - जहां किसी निर्जीव वस्तु या भाव को व्यक्ति की तरह प्रस्तुत किया जाय वहां मानवीकरण अलंकार (परसानिफिकेशन) होता है । जैसा कि छायावाद वस्तु विधान के अन्तर्गत यह कहा जा चुका है कि छायावादी कवि अपने अन्तरस् के भावों को वस्तुओं पर आरोपित करता है और वस्तु को अपनी भावनाओं के रंग से रंग देता है, अत: वस्तुओं को जीवित मानव जैसा भी प्रस्तुत किया गया है । छायावादी काव्य ऐसे मानवीकरण अलंकारों से भरा पड़ा है । रात्रि का मानवीकरण देखें :-

पगली हां सम्हाल ले कैसे
छूट पड़ा तेरा अंचल,
देख बिखरती है मणिराजी
अरी उठ बेसुध चंचल - (कामायनी)

लज्जा का मानवीकरण -

मैं उसी चपल की धात्री हूं
गौरव - महिमा हूं सिखलाती
ठोकर जो लगने वाली है
उसको धीरे से समझाती - (कामायनी)

जुही की कली का मानवीकरण -

बिजन - वन - वल्लरी पर
सोती थी सुहागभरी स्नेह स्वप्न - मग्न अमल कोमल तनु तरुणी
जुही की कली, दृगबन्द किए शिथिल पत्रांक में - (अपरा)

२ - <u>विशेषण - विपर्यय</u> - (Transferred Epithet)

सामान्यत: विशेषण का प्रयोग विशेष्य के लिये होता है। परन्तु जब जिस विशेष्य के लिए उसका प्रयोग होना चाहिए, उसके लिए न होकर अन्य के लिए हो जिसके लिए उसका विधान न हो, फिर भी चारुत्व की अभिवृद्धि होती ही हो, ऐसे अलंकार को विशेषण - विपर्यय कहते हैं।

क - वेदी की <u>निर्मम</u> प्रसन्नता
पशु की कातर वाणी
मिलकर वातावरण बना था
कोई कुत्सित प्राणी - (कामायनी)

ख - चल चरणों का <u>व्याकुल</u> पनघट
कहाँ आज वह वृन्दावन ? (परिमल)

ग - बच्चों के <u>तुतले</u> मयसी (पल्लव)

घ - आह यह मेरा <u>गीला</u> गान (पल्लव)

३ - <u>ध्वन्यर्थ व्यंजना</u> (Onomatopoeia) -

जहां शब्दों से निसृत ध्वनि अर्थ को व्यंजित करे वहां ध्वन्यर्थ व्यंजना अलंकार होता है। जैसे - कंकण किंकिणी नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन राम हृदय गुनि। से नूपुरों की ध्वनि आ रही है। छायावादी काव्य में इस प्रकार के अलंकार खूब आए हैं :

(क)- खग - कुल - कुल - कुल सा बोल रहा
किसलय का अंचल डोल रहा - (लहर, पृष्ठ १६)

(ख) - मृदु मंद मंद मंथर मंथर लघु तरणि हंसिनी सी सुन्दर
तिर रही खोल पालों के पर । (गुंजन)

(ग) रूकण - कण कर कंकण, प्रिय
किण किण रव किंकिणी
रणन रणन नूपुर, उर लाज
लौट रंकिणी - (गीतिका, गीत सं० ६)

निष्कर्ष :

इस प्रकार छायावादी कवियों के सिद्धान्तों और अलंकार - व्यवहार की समीक्षा के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि छायावादी काव्य में पूर्वयुगीन रीतिकाल की भांति उक्ति-वैचित्र्य एवं चमत्कार - प्रदर्शन हेतु अलंकारों का प्रयोग नहीं हुआ है । यहां अलंकार स्वत: निर्मित हैं और वे कवि की स्वानुभूतियों के अनुरूप हैं और अभिव्यंजना के सहायक होकर आए हैं । छायावादी कवि की दृष्टि शब्दालंकारों के प्रतिकूल और अर्थालंकारों के प्रति अधिक रहा है । यहां परम्पराविहित अलंकारों की नियोजना कुछ विलक्षणता और नवीनता के साथ हुई है । अत: परम्परागत अलंकारों की सम्भावनाएं यहां अधिक हैं । भारतीय अलंकारों के प्रति नवीन दृष्टि तक ही यह काव्य सीमित नहीं रहा अपितु इसमें आंग्ल साहित्य के मानवीकरण, विशेषण - विपर्यय और ध्वन्यर्थ व्यंजनादि अलंकारों को भी आत्मसात् कर हिन्दी काव्य जगत को एक उदारवादी अभिनव दृष्टि प्रदान की ।

कुल मिलाकर, छायावादी काव्य की अलंकार विषयक दृष्टि भावोत्कर्षक, रसपुष्टि सहायक, उदार, स्वच्छंद एवं नवीनतावादी रही है । छायावादी युग में अलंकारों की अलंकरण संबंधी रूढ़िगत दृष्टिकोण में भी भारी परिवर्तन हुआ है । यहां अलंकारों की परम्परामुक्त विवेचना को अलभ्‌ न मानकर उसके स्वरूप की मनोवैज्ञानिक आलोचना की गयी है । सारांशत: छायावादियों की अलंकार - योजना वस्तु और अभिव्यंजना को सूक्ष्म रूप प्रदान करती है परन्तु वे अलंकार को अलंकार्य से श्रेष्ठ समझते हैं, वे अलंकार और अलंकार्य को भिन्न समझते हुए भी अलंकारों का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं स्वीकार करते ।

(३) छायावादी प्रतीक-विधान :

` प्रतीक ` शब्द विविध अर्थों में व्यवहृत होता है :-

(१) चिन्ह, लक्षण, निशान, (२) मुंह, मुख, (३) आकृति या रूप या सूरत, (४) किसी के स्थान पर या बदले में रखी हुई या काम आनेवाली वस्तु, (५) प्रतिमा, मूर्ति, (६) वह जो किसी समष्टि के प्रतिनिधि के रूप में और उसकी सब बातों का सूचक या प्रतिनिधि (सिम्बल) हो ।[१] इन अर्थों को अपने अन्दर समेट कर रखने वाला ` प्रतीक ` शब्द अत्यन्त व्यापक है । जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में इसका प्रयोग विभिन्न प्रकार से होता है । हमारे सामाजिक या राष्ट्रीय जीवन में हमारे गौरव का सूचक कोई रंग, आकृति या चिन्ह प्रतीक कहलाता है । उदाहरण के लिए किसी संस्था का कोई व्यापारिक चिन्ह, किसी सामाजिक मान्यता का कोई मुद्रा; किसी राष्ट्र के राष्ट्रध्वज और उसमें प्रयुक्त रंग और आकृतियां सभी प्रतीक हैं । इसी प्रकार धार्मिक क्षेत्र में प्रस्तर या धातु की मूर्तियां परम सत्ता के प्रतीक के रूप में पूजी जाती हैं । वैसे ही साहित्य के क्षेत्र में भी, किसी भाव या विचार का प्रतिनिधि बनकर आनेवाला शब्द ही ` प्रतीक ` कहलाता है । आंग्ल आलोचक आस्टिन वारेन तथा वेलेक का कथन है कि ` प्रतीक ` एक ऐसी संज्ञा है जिसका प्रयोग तर्कशास्त्र, गणित, चिन्ह - विज्ञान, ज्ञान - सिद्धान्त, धर्मशास्त्र, ललितकला और कविता सभी में होता है ।[२] साधारणतः किसी अन्यवस्तु के लिए आने वाले शब्द को ` प्रतीक ` कहते हैं ।

साहित्य में प्रतीकों का प्रयोग निम्नांकित प्रयोजनों के लिए होता है :-

१ - सूक्ष्म भाव, विचार या कल्पना को स्थूल रूप में प्रस्तुत करना । उदाहरण के लिए ` निराशा ` को अन्धकार और ` ज्ञान ` को ` प्रकाश ` का प्रतिक मानना ।

---

१ - प्रामाणिक हिन्दी (शब्द) कोष, श्री रामचन्द्र वर्मा : पृष्ठ 683

२ - Theory of literature : Austin Warren and Rene Wellech, page 193.

२ - अपरिचित वस्तु का परिचय किसी परिचित आधार पर देने के लिए जैसे ' मानस ' में ज्ञान को दीप और चिन्तामणि के रूप में प्रस्तुत किया गया है ।

३ - प्रस्तुत का वर्णन करके पाठक के हृदय में प्रस्तुत विषय के प्रति जिज्ञासा जागृत करना, यथा - ' ठाढ़ा सिंह चरावे गाई ।'

४ - विषय वस्तु की व्यंजना अभिधा में न करके व्यंग्य में करना, जैसे बिहारी के ' नहि पराग नहि मधुर मधु ' आदि दोहे में कली अस्पष्ट यौवन बाला का प्रतीक है ।

५ - एक ही शब्द, वाक्य, प्रसंग, कहानी या काव्य के द्वारा दो विषयों का प्रतिपादन एक साथ करना, जैसे ' कामायनी ' में मनु - श्रद्धा एवं ' पद्मावत ' के रत्नसेन और पद्मिनी के प्रतीकों द्वारा लौकिक और आध्यात्मिक की व्यंजना ।

छायावादी कवियों के प्रतीक विषयक मत :-

प्रसाद जी लिखते हैं कि अपनी अनुभूति और संवेदना को आकार देने के लिए हमें प्रतीकों की रचना करनी पड़ती है और युगानुकूल प्रतीकों के लिए नये-नये आधार ढूंढने पड़ते हैं । ' सौन्दर्यबोध विना रूप के हो ही नहीं सकता । सौन्दर्य की अनुभूति के साथ ही साथ हम अपने संवेदन को आकार देने के लिए उनका प्रतीक बनाने के लिए बाध्य हैं ।'[१] यहां प्रसाद जी संवेदन को आकार प्रदान करने के लिए प्रतीकों की सृष्टि करने की बात करते हैं । यह सर्वथा उचित नहीं । प्रतीक हमारे संवेदन को अभिव्यक्त या एक्सप्रेस तो अवश्य करते हैं, परन्तु उन्हें रूप या आकार देने का काम तो विम्बों (इमेजेज) द्वारा होता है । अतः प्रतीकों की बहुत ही स्पष्ट और सही व्याख्या प्रसाद जी नहीं कर सके हैं । यद्यपि उनका यह कथन शत प्रतिशत सत्य है कि अनुभूति की सूक्ष्मता हर नये - नये युग में आयाम लेती है । ' आलम्बन के प्रतीक उन्हीं के लिए अस्पष्ट होंगे, जिन्होंने यह नहीं समझा कि रहस्यमयी अनुभूति युग के अनुसार अपने लिए विभिन्न आधार चुना करती है ।'[२]

---

१ - काव्य कला तथा अन्य निबंध : प्रसाद सं० २०१५, पृष्ठ ३५ ।
२ - गीतिका की भूमिका : जयशंकर प्रसाद ।

पंत ने भी प्रतीकों के विषय में कुछ कहा है। इस सन्दर्भ में वेदो दो बातें कहते हैं। एक तो यह कि जो कुछ भी अनुभूत या प्रतीत होता है किन्तु जिसे स्वर या वाणी व्यक्त नहीं कर पाती, उसे प्रतीक ही एक सीमा तक झलकाने में समर्थ हुआ करता है। इसी सन्दर्भ में वे कहते हैं कि :-

जो अव्यक्त रहा अम्बर में,
मुक्त अगीत रहा ध्वनि सर में,
उन्हें प्रतीकों मे ही विंवित
रहने दो, रहने दो। (वाणी)

प्रतीकों के विषय में जो दूसरी बात उन्होंने कही वह यह कि प्रतीक मानव - चेतना के परिचायक हैं। मानव - चेतना के विकास के साथ प्रतीकों का भी विकास होता चलता है :-

" हमारा मन जिस प्रकार विचारों के सहारे आगे बढ़ता है, उसी प्रकार मानव-चेतना के सहारे विकसित होती है। हमारे राम और कृष्ण भी इसी प्रकार के प्रतीक हैं, जिनके व्यक्तित्व में एक युग की संस्कृति मूर्तिमान हो उठी है।"[१] इस प्रकार पंत जी ने प्रतीकों के सही स्वरूप और महत्व का प्रतिपादन किया है।

छायावाद के प्रमुख कवि और प्रख्यात आलोचक डा० रामकुमार वर्मा ने भी प्रतीकों के विषय में अपने मत व्यक्त किए हैं। आपके अनुसार " एक शब्द में ही अनेक-नेक भावों की अभिव्यक्ति प्रतीक का निर्माण करती है। " अरुण शिखा ध्वनि " प्रभात के लिए प्रतीक बन गयी है अथवा " अशोक " पुष्प जहां तु - सूचक है, वहां मुग्धा के पदघात की व्यंजना में भी सार्थक हुआ है। प्रतीक का संबंध शब्द शक्ति की ध्वनि शैली से है। अतः साहित्य में अर्थ की विपुलता के लिए प्रतीक प्रयुक्त होगा। जिस प्रकार मधु का एक विन्दु सहस्त्रों पुष्पों एवं मकरन्द का संश्लिष्ट रूप है, उसी भांति एक प्रतीक अनेकानेक मानव जगत और वस्तु जगत के कार्य -व्यापारों का संकलन है। अतः साहित्य के इतिहास में मंत्र से लेकर आत्मबोध की अनेक भावनाएं इसी प्रतीक द्वारा उद्वुद्ध हुई है। प्रतीक व्यष्टि मे समष्टि का सम्प्रेषण है।"[२]

---

१ - गद्य पथ (१९५३), पृष्ठ १४५, साहित्य भवन ; इलाहाबाद।
२ - साहित्य शास्त्र (१९५६) पृष्ठ ११८, भारतीय विद्या भवन, इलाहाबाद।

इस प्रकार छायावादी कवियों ने प्रतीकों के विषय में अपने विचार यत्र - तत्र व्यक्त किए हैं। परन्तु समष्टि रूप से उनसे कोई निश्चित सिद्धान्त - निरूपण नहीं होता। फिर भी हम कह सकते हैं कि छायावाद युगीन सूक्ष्म विषयानुरूप अभिव्यक्ति हेतु ही प्रतीकों की अवतारणा हुई है। ये प्रतीक भावों को मूर्तता और अभिव्यक्ति को सबलता प्रदान करते हैं।

छायावादी काव्य में प्रतीक - व्यवहार :-

छायावादी कवियों में 'प्रसाद' जी का अपना स्थान है। उनके 'आंसू' और 'कामायनी' काव्य तो प्रतीकों की भाषा में ही लिखे गए हैं। 'आंसू' तो अपनी प्रतीकात्मकता के कारण अस्पष्ट और दुरूह हो गया है। कुछ स्पष्ट उदाहरण इस प्रकार हैं :-

"पतझड़ था झाड़ खड़े थे, सूखी - सी फुलवारी में
किसलय नवे कुसुम बिछाकर, आये तुम इस क्यारी में।
झंझा झकोर गर्जन है, बिजली है नीरद माला।
पाकर इस शून्य हृदय का, सबने आ डेरा डाला।
ये सब स्फुलिंग हैं मेरी, इस ज्वालामयी जलन के।
अवशेष चिन्ह हैं केवल मेरे उस महामिलन के।"

उपर की पंक्तियों में कुछ प्रतीक निम्नांकित हैं :-

पतझड़ (शुष्कता), फुलवारी (हृदय), झंझा - झकोर गर्जन (हृदय की दारुण व्यथा मूलक भावनाएं), बिजली (रुक -रुक कर उठने वाली व्यथा), नीरद माला (उदासीनता), स्फुलिंगर (गर्म आंसू)। इसी प्रकार 'कामायनी' के कुछ प्रती निम्नांकित पंक्तियों

में दर्शनीय हैं :-

१ - मुझको काँटे ही मिले धन्य हो सपनल तुम्हें ही कुसुम-कुंज ।

२ - श्रद्धा देख रही चुप मनु के भीतर उठती आंधी को ।

३ - इस देव द्वन्द्व का यह प्रतीक, मानव करले सब भूल ठीक ।

४ - मधुमय वसन्त जीवन वन के, वह अन्तरिक्ष की लहरों में
कब आए थे तुम चुपके से, रजनी के पिछले पहरों में ।

यहां काँट (दु:ख), कुसुम - कुंज (सुखमय वातावरण), आंधी (क्षोभ) वसन्त (यौवन), रजनी (वय:संधि) आदि प्रतीक हैं ।

निराला काव्य में भी प्रतीकों का बहुल प्रयोग है, यथा -

मैं अकेला
देखता हूं आ रही
मेरे दिवस की सान्ध्य वेला ।
पके आधे बाल मेरे
हुए निष्प्रभ गाल मेरे
चाल मेरी मन्द होती जा रही
हट रहा मेला ।

यहां दिवस (जीवन), `सान्ध्यवेला` (अंतिम क्षण), मेला (सांसारिक प्रपंच) आदि प्रतीक होकर आए हैं । इसी प्रकार `राम की शक्ति पूजा` में चक्र, आज्ञा, त्रिकुटी, द्विदल, ध्यान, सहस्त्रार आदि समूचे योग - साधना के प्रतीक बनकर प्रयुक्त हुए हैं ।

पंत में प्रतीकों के बहुल प्रयोग हैं । उनके प्रारम्भिक प्रतीक भावात्मक हैं । ये प्रतीक प्रकृति के प्रस्तुत क्षेत्र से गृहीत हैं - संध्या, सागर, पुलिन, काँटे, पल्लव, बुद्बुद, सौरभ, मधुमास आदि । `स्वर्ण किरण` में स्वर्ण नवीन चेतना का, `शिखर`

सत्य का, ` पांखी ` प्राणों के प्रतीक बनकर आए हैं। पंत जी की ` मोती वाली मछली ` प्रतीक बहुत प्रसिद्ध है :-

१ - सुनती हूं, इस निस्तल जल में,
रहती मोती मछली वाली
पर मुझे डूबने का भय है
भाती तट की चल-जल माली - (गुंजन)

इन पंक्तियों में ` निस्तल जल ` विराट विश्व का, ` मोती ` ब्रह्म का, ` मछली ` जीवन मुक्त आत्मा का, ` डूबने का भय ` सांसारिकता में निमग्न होने का, ` तट की चल जल - माली ` विश्व की क्षणभंगुरता के प्रतीक हैं। ` स्वर्ण किरण ` की ` अशोक बन ` कविता तो सर्वथा प्रतीकात्मक है जिसमें ` सीता ` धरा -चेतना, ` राम ` ईश्वर, ` रावण ` भौतिकता के प्रतीक हैं। समग्रतः पंत - काव्य में विविध स्त्रोतों से ग्रहीत प्रतीकों की भरमार है।

महादेवी जी के काव्य में प्रतीकों का प्रचुर प्रयोग है। आपकी प्रारम्भिक रचनाओं में दीपक, फूल, झंझा, आकाश, नीड़ आदि अप्रस्तुत की तरह प्रयुक्त हुए हैं परन्तु उत्तरवर्ती रचनाओं में इनकी आवृत्ति ने इन्हें प्रतीक के स्तर तक पहुंचा दिया है। महादेवी जी की कविताओं में ` दीपक ` वासना का ` पिंजर ` प्रेम - बंधन का, ` दर्पण ` स्वच्छता का प्रतीक बनकर आया है :-

१ - मधुर मधुर मेरे दीपक जल - (आधुनिक कवि १)

२ - करि का प्रिय आज पिंजर खोल दे (आधुनिक कवि १)

३ - टूट गया वह दर्पण निर्मम (आधुनिक कवि १)

महादेवी जी ने भावों की सूक्ष्म व्यंजना के लिए प्राकृतिक उपकरणों को प्रतीक के रूप में ग्रहण किया है। कुछ उदाहरण यहां दिये जा रहे हैं :-
ग्रीष्म (क्रोध), वर्षा (करुणा), वसन्त (आनन्द), रश्मि (सुख), मधुप (प्रेमी), नौका (जीवन), तम (अज्ञान), प्रभात (प्रसन्नता), वीणा या वीणा (आत्मा) के लिए।

महादेवी के प्रतीक सदा एक ही निश्चित अर्थ नहीं देते । ' शलभ ' कहीं पर आदर्श प्रेमी का प्रतीक है तो कहीं महासक्त व्यक्ति का, ' सरिता के कूल ' कहीं विरह और मिलन के लिए तो कहीं जीवन और मृत्यु के लिए प्रतीक बनकर आये हैं । आये हैं । महादेवी के प्रतीक प्रकृति से ही नहीं ललित कलाओं से भी ग्रहीत हैं । जैसे : विहाग, तान, मूर्च्छना, तार, झंकार, वीणा (संगीत से), रंग रेखा, तूलिका (चित्रकला से), पाषाण, मूर्तिकार (मूर्तिकला)से ।

' कविता के संसार में अब ' फूल ' सुख का, ' शूल ' दुःख का, ' दिन ' सुख का और ' रात्रि ' दुःख का, आलोक ' ज्ञान अथवा सुख का और ' तिमिर ' अज्ञान अथवा अवसाद का, (मानस ' अन्तर्लोक का, ' लहर ' कामना का, ' वीणा ' हृदय का, ' रागिनी एवं मूर्च्छना ' वेदनाओं का, मधु आनन्द एवं माधुर्य का, ' मदिरा ' रुचि अथवा रूप का, ' उषा ' आरम्भ अथवा औज्वल्य (आनन्द) का, संध्या अवसान या विलास का, ' इन्द्र धनुष ' रंगीनी या क्षणभंगुरता का, ' वसन्त ' यौवन का, ' मधुप ' प्रेमी का, ' मुकुल ' प्रेयसी का, ' स्वर्ण ' वैभव या दीप्ति का, ' रजत ' रूप या धवलता का, ' तूफान ' भावावेश का, झंकार ' भावना या संवेदना का, ' सरिता ' यौवन का, ' मरुत् ' श्वास का, ' संगीत ' तन्मयता का, ' हास ' विकास का, ' अश्रु ' पीड़ा का, मिट्टी ' नश्वरता का, ' मुरली ' मधुर भावना का, ' हंस ' प्राणों का प्रतीक बन गया और भाषा की लाक्षणिकता में भी अभूतपूर्व उन्नति हुई । '[१]

छायावादी प्रतीकों के स्त्रोत और वर्गीकरण :-

छायावादी प्रतीकों के कुछ प्रमुख स्त्रोत प्रकृति, परम्परा, सम्प्रदाय और ललित कलाएं आदि हैं । इन्हें हम शीर्षकों में रख सकते हैं :-

१ - परम्परागत प्रतीक - अमृत, घन, चातक, हंस आदि ।
२ - प्रभाव जन्य प्रतीक - वंगभाषा व साहित्य से प्रभावित - यामिनी, निर्झर, झंकार अंचल ।

---

१ - हिन्दी कविता का क्रान्ति युग : डा० सुधीन्द्र : पृष्ठ २६ ।

३ - सार्वभौम प्रतीक - फूल (उल्लास), कांटा (दु:ख) ।

४ - देशगत प्रतीक - कल्पवृक्ष, कामधेनु, गंगा ।

५ - युगीन प्रतीक - वीणा, मधुमास, कली, सीपी आदि ।

६ - भावात्मक प्रतीक - फुलवारी, नव कुसुम, क्यारी, किसलय ।

७ - वैयक्तिक प्रतीक - प्रसाद की ' नीलम की नाव ', निराला की 'हीरे की खान ', पंत की ' मोती वाली मछली, महादेवी का 'अरुणावाण' ।

८ - दार्शनिक प्रतीक - शिखर (सत्य), पांखी (प्राण), सोनजुही की वेल (शुभ चेतना) ।

९ - पौराणिक प्रतीक - सीता (पार्थिव चेतना), राम (ईश्वर), रावण (भौतिकता) ।

१० - अध्यात्मिक प्रतीक - दर्पण, छाया, परदा ।

निष्कर्ष :

छायावादी कविता प्रतीक बहुला है । ये प्रतीक विविध क्षेत्रों से गृहीत हैं, विशेषकर प्रकृति से । इनमें रूप - गुण सादृश्य की अपेक्षा प्रभाव साम्य पर विशेष बल है । ये प्रतीक मुख्यत: छायावादी अन्तर्मुखी भावों के लिए हैं चूंकि भाव अनन्त है अत: ये प्रतीक भी अनन्त हैं । भावों में अस्पष्टता भी होती है, फलत: छायावादी प्रतीकों में भी अनिश्चिता (इंनडिफिनिटनेस) और अस्पष्टता है ।

(४) छायावादी छन्द - शिल्प :

छायावादी काव्य वस्तुतः मुक्तिवादी है । उसकी यह प्रवृत्ति केवल विषय, भाव, भाषा एवं अलंकार आदि के क्षेत्र में ही नहीं अपितु छन्दों में भी दृष्टिगोचर होती है । द्विवेदी जी ने अपने युग के कवियों को अनेकानेक नवीन छन्दों में लिखने का आवाहन किया परन्तु काव्य छन्द में नवता नहीं आ सकी । यद्यपि द्विवेदी-युग के कवियों ने छन्दों में विविध प्रयोग किए परन्तु उन्होंने संस्कृत, उर्दू तथा लोकछन्दों की जो अविकल उद्धरिणी खड़ी बोली कविता में प्रस्तुत की है, वह स्वाभाविकता से कुछ दूर है । छन्दों की इस प्रदर्शनी में मौलिकता का अभाव और कृत्रिमता एवं अनुकरणात्मकता का प्राचुर्य है ।

परन्तु छायावादी काव्यों ने अपने को परम्परागत छन्द विधान और कृत्रिमता से मुक्तकर लिया । इस युग के कवियों ने मुक्त कण्ठ से छन्दों के बंधन तोड़ फेंकने का आवाहन किया :-

१ - आ तू प्रिये छोड़ वन्धनमय छन्दों की छोटी राह -
गज गामिनि, वह पथ तेरा संकीर्ण कंटका कीर्ण । (निराला: अनामिका)

२ - मैं तब भी
लिखता अबाध गति मुक्त छन्द - (निराला : अपरा)

३ - खुल गए छन्द के बंध,
प्रास के रजत पास
अब गीत मुक्त
ओ ' युगवाणी बहती अयास, (पंत: युगवाणी)

स्पष्ट है कि छायावादी कवियों ने छन्दों से मुक्ति का आवाहन किया । अतः उन्होंने इस क्षेत्र में अभिनव प्रयोग किये हैं और अपनी नवीन छन्द योजना के द्वारा हिन्दी खड़ी बोली काव्य को अनेक मौलिक उपहार दिये हैं ।

छायावादी कविता में तीन प्रकार के छन्द हैं - वर्णिक, मात्रिक और मुक्त ।[१] इन कवियों ने इनके विषय में अपने मत भी व्यक्त किए हैं । इन्होंने वर्णिक छन्दों का प्रयोग बहुत ही कम किया है । इनका मुख्य छन्द मात्रिक ही रहा । ये कवि सिद्धान्ततः वर्णिक छन्दों के विरुद्ध हैं । इसका मूल कारण है - भाषा की प्रकृति । छायावादी कवियों ने पाया कि वर्णिक छन्दों की स्वीकृति संस्कृत में ही सम्भव है क्योंकि उसकी प्रकृति संश्लेषणात्मक है । इसके विपरीत हिन्दी की प्रकृति विश्लेषणात्मक है । इसलिए वर्णवृत्त का निर्वाह एक सीमा तक संस्कृत में ही सम्भव है । किन्तु काव्य - विषय और कवि भावना के अनुरूप छन्द संगीत का निर्माण हो, इसकी आवश्यकता संस्कृत काल में ही समझी गई थी । इसी कारण विशेष छन्द, विशेष रसों या प्रसंगों के लिए अपेक्षाकृत अधिक अनुकूल है, इसका निर्देश दण्डी ने किया था । एक ही छन्द द्वारा काव्यगत विविध रसों और प्रसंगों को उपयुक्त सांगीतिक स्वर प्रदान करने की क्षमता वर्णवृत्त प्रणाली में सम्भव नहीं थी । आगे चलकर लोकछन्दों के आधार पर जब मात्रिक छन्द प्रणाली का जन्म हुआ तब इसके माध्यम से एक ही छन्द द्वारा विविध भावों, रसों या प्रसंगों के अनुकूल सांगीतिकता की सृष्टि संभव हुई, तब यह प्रणाली सहज ही लोक प्रिय हो उठी ।[२] चूंकि छायावादी कविता विषय प्रधान नहीं विषयी प्रधान थी, अतः उसमें नवीन भावों और अनुभूतियों की उद्भावना हुई और भावानुरूप - लय - निर्माण के लिए इन कवियों ने मात्रिक छन्दों का वरण किया । छायावादी कवि ने मात्रिक छन्दों को ही क्यों स्वीकार किया, इस संदर्भ में श्री सुमित्रानन्दन पंत की निम्नांकित पंक्तियां ध्यातव्य है :-

" हिन्दी का संगीत केवल मात्रिक छन्दों में ही अपने स्वाभाविक विकास तथा स्वास्थ्य की सम्पूर्णता प्राप्त कर सकता है, उन्हीं के द्वारा उसमें सौन्दर्य की रक्षा की जा सकती है वर्ण-वृत्तों की लहरों में उसकी धारा अपना चंचल नृत्य, अपनी नैसर्गिक मुखरता, कल - कल छल - छल तथा अपने क्रीड़ा, कौतुक, कटाक्ष एक साथ ही खो बैठती है, उसकी हास्य दृष्ट सहज मुख मुद्रा गम्भीर मौन तथा अवस्था से अधिक प्रौढ़ हो जाती, उसका चंचल

---

१ - हिन्दी की छायावादी कविता का कला विधान : डा० बलवीर सिंह रत्न, पृष्ठ २८४।
२ - छायावादी काव्य और निराला : डा० (कु०) शान्ति श्रीवास्तव : पृष्ठ १५५, प्र०सं० ।

भृकुटि - भंग बनावटी गरिमा से दब जाता है । ऐसा जान पड़ता है कि उसेके चंचल पदों से स्वाभाविक नृत्य छीन कर किसी ने, बलपूर्वक, उन्हें सिपाहियों की तरह गिन गिन कर पांव उठाना सिखलाकर, उनकी चंचलता को पद-चालन के व्यायाम की बेड़ी से बांध दिया है । हिन्दी का संगीत ही ऐसा है कि उसके सुकुमार पद-क्षेप के लिए वर्णवृत्त पुराने फैशन के चांदी के कड़ों की तरह बड़े भारी हो जाते हैं, उसकी गति शिथिल तथा विकृत हो जाती है, उसके पदों में वह स्वाभाविक नूपुर ध्वनि नहीं रहती ।[१]

इस प्रकार छायावादी कवियों ने वर्णवृत्तों के प्रयोग का बहिष्कार किया । पंत जी के अनुसार काव्य में संगीतात्मकता होती है और काव्य संगीत के मूल तन्तु स्वर हैं न कि व्यंजन ।[२] वर्णवृत्तों कवित्त-सवैया आदि में जो राग मिलता है उसमें व्यंजन प्रधान है, उसमें स्वर अथवा मात्राओं के विकास के लिए अवकाश नहीं मिलता । पंत जी ने कवित्त और सवैया के विषय में लिखा है कि सवैया तथा कवित्त छन्द भी मुझे हिन्दी की कविता के लिए अधिक उपयुक्त नहीं जान पड़ते । सवैया में एक ही सगण की आठ बार पुनरावृत्ति होने से, उसमें एक प्रकार की जड़ता, एक स्वरता (मोनोटोनी) आ जाती है । उसके राग का स्वर पात बार-बार दो लघु अक्षरों के बाद आने वाले गुरु अक्षर पर पड़ने से सारा छंद एक तरह की कृत्रिमता तथा राग की पुनरावृत्ति से जकड़ जाता है । कवित्त छन्द, मुझे ऐसा जान पड़ता है, हिन्दी का ओरस जात नहीं, पोष्य पोष्य - पुत्र हैं, न जाने हिन्दी में वह कैसे और कहां से आ गया ।[३]

पंत जी के इस मत की आलोचना प्रस्तुत करते हुए निराला जी कहते हैं कि कवित्त - छन्द की गति के अनुकूल हुई है ।[४] स्पष्ट है निराला जी ने अपने काव्य में कवित्त छन्द की प्रयोग नहीं किया परन्तु उनके मूल छन्द में कवित्त की लय का बड़ा भारी

---

१ - पल्लव - प्रवेश : पृष्ठ २२ - २३ ।
२ - पल्लव - प्रवेश : पृष्ठ २७ ।
३ - पल्लव - प्रवेश : पृष्ठ २५ ।
४ - प्रबन्ध - पद्म : पंत और पल्लव : पृष्ठ ६६ ।

योगदान है । इस प्रकार आलोचना - प्रत्यालोचना के बीच हम पाते हैं कि वर्णवृत्तों का प्रयोग इन कवियों ने बहुत कम किया है, फिर भी इन्हें इसकी अपेक्षा अवश्य है, कम से कम उन्होंने उसकी उपेक्षा नहीं की । प्रसाद के ` झरना ` के तुम शीर्षक कविता में कवित्त तथा महादेवी के ` यामा ` के एक गीत [१] में सवैया का प्रयोग हुआ है । इसी प्रकार ` कानन - कुसुम ` की ` गंगा - सागर ` नाम्नी कविता में वर्णिक छन्द द्रुति विलंबित का प्रयोग है । अत: छायावादी काव्य में नाम-मात्र के लिए वर्णिक छन्दों का प्रयोग हुआ है ।

मात्रिक छन्दों से छायावादी काव्य भरा पड़ा है । मात्रिक छन्द के सम, अर्ध सम, विषम छन्दों का प्रयोग खूब हुआ है । सम मात्रिक छन्दों में हरि गीतिका, गीतिका, रोला, रूपमाला, लाटंक, पद्धरि, पल्वंगम, सखी, चौपाई, चौपाई, गोपी आदि का प्रयोग छायावादी काव्य में किंचित् भिन्नता के साथ हुआ है । अर्द्धसम मात्रिक छन्दों में - दोहा, सोरठा, दोहा, हरिपद, धत्ता तथा घनानन्द हैं । इनमें से केवल दोहा और सोरठा का प्रयोग छायावादी कविता में मिलता है, वह भी बहुत कम स्थानों पर । इसके अतिरिक्त सम मात्रिक छन्दों का अर्द्धसम रूप में प्रयोग तथा स्वनिर्मित अर्द्धसम छन्दों का प्रयोग छायावादी कविता में हुआ है । विषम मात्रिक छन्दों में अमृतध्वनि, कुंडलिया तथा छप्पय आदि आते हैं । इनका भी छायावादी कविता में प्रयोग विरल है । ` प्रसाद ` के ` कानन कुसुम ` संग्रह की ` नमस्कार `, ` ठहरो `, ` बाल क्रीड़ा ` तथा ` कोकिल ` कविताएं इसी छन्द में हैं । वस्तुत: छप्पय कुण्डलिया आदि छन्दों की गणना विषम मात्रिक छन्द में नहीं करनी चाहिए । ये मिश्र कोटि के छन्द हैं क्योंकि इनमें सब चरण असमान होते । दो निश्चित छन्दों को निश्चित क्रम से रखने पर ये बनते हैं । छायावादी कविता में भी यही प्रवृत्ति मिलती है । निश्चित मात्राक्रम वाले दो या अधिक छन्दों के चरणों को मिलाकर एक इकाई का निर्माण और उसकी आवृत्ति यहां दर्शनीय है । इस प्रकार छायावादी काव्य में मिश्र छन्दों का प्रयोग उनकी उन्मुक्तता का प्रमाण है । इन कवियों ने परम्परागत छन्दों का प्रयोग भी कतिपय नवीनता के साथ किया है । कहा जा सकता है कि इस क्षेत्र में भी उनकी दृष्टि नवीनतावादी है । छायावादी कविता

---

१ - ` इन आंखों ने देखी न राह कहीं `, महादेवी : यामा : पृष्ठ ६५ ।

में हिन्दी छन्दशास्त्र के नियमानुसार सम, अर्द्धसम तथा विषम छन्दों का प्रयोग हुआ है तथा मात्रिक छन्दों के साथ विरल रूप में अपवाद स्वरूप कहीं - कहीं 'वर्णिक छन्द भी प्रयुक्त हुए हैं तथापि इन सभी प्रयोगों में जो नवीनताएं दृष्टिगत होती हैं, उन्हें इस युग के कवि की स्वच्छन्द मनोवृत्ति का ही परिणाम समझना चाहिए । विरल रूप में प्रयुक्त वर्णिक मुक्तकों को गीत रूप में लिखना, सम छन्दों को अर्द्धसम रूप देना, नवीन सम तथा अर्द्धसम छन्दों की सृष्टि यति और अन्त में लघु और गुरु के संबंध में स्वतंत्रता दिखाना, विभिन्न छन्दों की लयों अथवा चरणों के आधार पर अभिनव क्रमायोजन द्वारा छन्द की एक इकाई बनाना, पदान्तर प्रवाही प्रयोग, चरणान्त में अतुकान्त का प्रवर्तन, परम्परागत विषम (संयुक्त या मिश्र) छन्द से भिन्न असमान चरणों वाले अभिनव अन्तमुक्त छन्द का प्रयोग आदि ऐसी अनेक विशेषताएं हैं जिनका प्रवर्तन एवं प्रतिष्ठापन छायावादी कवि ने किया है ।'[१] कहा जा सकता है कि छायावादी कवियों की परम्परागत छन्दों की प्रति भी नवीनतावादी और मौलिकता वादी दृष्टि है । इसमें उन्होंने आंग्ल, बंगला, उर्दू एवं लोक गीतों का प्रभाव भी ग्रहण किया है । छायावादी काव्य की इस मौलिक छन्द दृष्टि का प्रमाण मुक्त - छन्दों में देखा जा सकता है ।

छायावादी मुक्त छन्दों का विवेचन :-

जिस प्रकार छायावादी काव्य का भाव सौन्दर्य और विचार पद्धति उसकी अपनी है उसी प्रकार उसका छन्द विधान भी । छन्द विधान के इस रूप को आलोचकों ने ` स्वच्छन्द छन्द ` या ` मुक्त - छन्द ` कहा है । आलोचकों ने ` स्वच्छन्द छन्द ` और मुक्त छन्द में भेद किया है, परन्तु छायावादी कवियों ने इनमें कोई भेद नहीं किया है । कविवर पंत और निराला दोनों ने ही स्वच्छन्द छन्द, मुक्त छन्द और मुक्त काव्य

१ - हिन्दी की छायावादी कविता का कला - विधान : डा० बलवीर सिंह ` रत्न `, पृष्ठ ३०३ ।

इन तीनों को एक अर्थ में ही प्रयुक्त किया है। `पल्लव` की भूमिका में पंत जी कहते हैं :-

`हिन्दी में `मुक्त काव्य` का प्रचार भी दिन - दिन बढ़ रहा है, कोई इसे रबर काव्य कहता है, कोई इसे कंगारू। सन् १९२१ में `जब `उच्छ्वास` मेरी विरह कृश लेखनी से यदा के `कनक - वलय` की तरह निकल पड़ा था, तब `निगम` जी ने `सम्मेलन पत्रिका` में उस `बीसवीं सदी के महाकाव्य` की आलोचना करते हुए लिखा था, `इसकी भाषा रंगीली, छन्द स्वच्छन्द है। ---इस मुक्त छन्द की विशेषता यह है कि इसमें भाव तथा भाषा का सामंजस्य पूर्ण रूप से निभाया जा सकता है।`[१] यहां स्पष्ट है कि छायावादी काव्य में प्रयुक्त छन्दों के लिए `स्वच्छन्द छन्द` नाम `निगम` जी ने दिया है। `निगम` जी द्वारा प्रयुक्त इस नाम को निराला जी भी अंगीकार करते हैं :-

`तीसरे खंड में स्वच्छन्द छन्द हैं, जिसके संबंध में मुझे विशेष रूप से कहने की जरूरत है, कारण, इसे ही हिन्दी में सर्वाधिक कलंक का भाग मिला है। मुक्त छन्द तो वह है, जो छन्द की भूमिका में रहकर भी मुक्त है। इस पुस्तक के तीसरे खण्ड में जितनी कविताएं हैं, सब इसी प्रकार की हैं।`[२] मुक्त काव्य या स्वच्छन्द छन्द में अन्तर न मानते हुए पुनः वे कहते हैं कि :-

`---इस प्रकार की कविता ऋतुकान्त काव्य का गौरव भले ही अधिकृत करती हों, वह मुक्त-काव्य या स्वच्छन्द छन्द कदापि नहीं।`[३] अतः स्पष्ट है कि छायावादी कवियों ने मुक्त काव्य स्वच्छन्द छन्द या मुक्त छन्द तीनों नाम एक ही अर्थ में व्यवहृत किया है।

---

१ - `पल्लव` की भूमिका : पंत
२ - परिमल की भूमिका : निराला, पृष्ठ ६, अष्ठम संस्करण।
३ - परिमल की भूमिका : निराला, पृष्ठ १६, अष्ठम संस्करण।

स्वच्छन्द छन्द या मुक्त छन्द का स्वरूप - जहां छायावादी कवियों - पंत और निराला - में नामकरण के प्रश्न पर एकत्व है, वहीं इसके स्वरूप - विवेचन में पर्याप्त मतभेद भी । निराला जी पंत जी के काव्य को गीति - काव्य मानते हैं, न कि स्वच्छन्द काव्य ।

पंत जी का दृष्टिकोण :

` यह स्वच्छन्द छन्द ` ध्वनि अथवा लय (रिद्म) पर चलता है । इस मुक्त छन्द की विशेषता यह है कि इसमें भाव तथा भाषा का सामंजस्य पूर्ण रूप से निभाया जा सकता है । अन्य छन्दों की तरह मुक्त काव्य भी हिन्दी में ह्रस्व - दीर्घ मात्रिक संगीत की लय पर ही सफल हो सकता है । छन्द का राग भाषा के राग पर निर्भर रहता है, दोनों में स्वरैक्य रहना चाहिए ।`[१]

स्पष्ट है कि पंतजी ने स्वच्छन्द छन्द में लय को प्रधान माना है । वही इस छन्द का आधार है । इस छन्द में भाषा और भावका पूर्ण सामंजस्य रहता है । एक स्थल पर पंत जी पुन: कहते हैं कि वे ऐसे मुक्त छन्द के समर्थक हैं जिसमें मात्रा, लय और संगीत तीनों की मैत्री हो ।[२] उनकी ` उच्छ्वास `, ` आंसू `, ` परिवर्तन `, ` दो मित्र `, झंझा में नीम `, ` उन्मेष ` तथा ` मानव ` कविताएं इसी कोटि की हैं ।

मुक्त काव्य के स्वरूप - विवेचन को और आगे बढ़ाते हुए वे कहते हैं कि मुक्त काव्य में ऐसे चरण, जिनकी गति भिन्न हों - जैसे पीयूषवर्षिणी तथा रोला के चरण - साथ - साथ अच्छे नहीं लगते, राग का प्रभाव कुण्ठित हो जाता है, गति बदलने के पूर्व लय को विराम दे देना चाहिए । ` पल्लव ` में मेरी अधिकांश रचनाएं इसी छन्द में हैं जिनमें ` उच्छ्वास `, ` आंसू ` तथा ` परिवर्तन ` विशेष बड़ी हैं । परिवर्तन में जहां भावना का क्रिया - कम्पन तथा उत्थान - पतन अधिक है, वहां कल्पना उत्तेजित तथा

---

१ - पल्लव की भूमिका : पंत : पृष्ठ ४४ - ४५।
२ - तत्रैव : पंत : पृष्ठ ३२-३८ ।

प्रसारित रहती, वहां रोला आया है, अन्यत्र सोलह - मात्रा का छन्द । बीच - बीच में छन्द की एक स्वरता तोड़ने तथा भावाभिव्यक्ति की सुविधा के अनुसार उसके चरण घटा - बढ़ा दिये गये हैं ।[१]

पंत जी के अपरिलिखित मंन्तव्य से स्पष्ट है कि मुक्त छन्द में लय की प्रधानता होती है और उसमें विभिन्न ज्ञात - अज्ञात मात्रिक छन्दों के सम-विषम चरणों के मिश्रण होते हैं । इस प्रकार पंत जी ने अपने मुक्त काव्य में परम्परा विहित छन्दों का प्रयोग करते हुए भी भावों के उच्छलन, अवरोहण के अनुसार उसमें सुविधानुसार परिवर्तन की स्वच्छन्दता से युक्त छन्द को ही स्वच्छन्द छन्द कहा है ।

निराला जी का दृष्टिकोण :

" जहां मुक्ति रहती है वहां बन्धन नहीं रहते । न मनुष्यों में, न कविता में । मुक्ति का अर्थ है बन्धनों से छुटकारा पाना । यदि किसी प्रकार का शृंखलाबद्ध नियम कविता में मिलता गया, तो वह कविता उस शृंखला से जकड़ी हुई हा होती है, अतएव उसे हम मुक्त के लक्षणों में नहीं ला सकते, न उस काव्य को मुक्त काव्य ही कह सकते हैं । -----मुक्त छन्द का समर्थक उसका प्रवाह ही है । वही उसे छन्द सिद्ध करता है और उसका नियम - साहित्य उसकी मुक्ति ।"[२] अतः मुक्त छन्द नियमों से रहित होता है । उसमें प्रवाह ही प्रमुख होता है जो उसे छन्द की भूमिका में रखता है । एक स्थल पर निराला जी पुनः कहते हैं कि मुक्त छन्द तो वह है जो छन्द की भूमिका में रहकर भी मुक्त है ।[३] स्पष्टतः मुक्त छन्द को छन्द की कोटि में रखनेवाला उसका प्रवाह है ।

निराला जी का स्वच्छन्द छन्द विषयक उनका दृष्टिकोण पंतजी से बिल्कुल भिन्न हैं । पंत जी की आलोचना करते हुए वे कहते हैं कि :-

" पंत जी ने तो लिखा है कि स्वच्छन्द छन्द ह्रस्व-दीर्घ मात्रिक संगीत पर चल सकता है । यह एक बहुत बड़ा भ्रम है । स्वच्छन्द छन्द में आर्ट आफ म्यूजिक नहीं मिल

१ - पल्लव : प्रवेश : पृष्ठ ३५-३६ ।
२ - परिमल की भूमिका : पृष्ठ १३ ।
३ - परिमल की भूमिका : पृष्ठ १३ ।

सकता, वहां है आर्ट आफ रीडिंग । वह स्वर - प्रधान नहीं व्यंजन - प्रधान है । वह कविता की स्त्री - सुकुमारता नहीं, कवित्व का पुरुष - गर्व है । उसका सौन्दर्य गाने में नहीं, बातालाप में है ।'[१]

निराला जी के अनुसार छन्द में संगीतात्मकता या आर्ट आफ म्यूजिक नहीं बल्कि उसमें पठन - कला या आर्ट आफ रीडिंग होती है । जहां स्वच्छन्द छन्द में संगीतात्मकता लयात्मकता और ह्रस्व दीर्घ स्वर मैत्री पर बल देते हैं, वहां निराला जी केवल पठन - कला और व्यंजन प्रधानता को स्वीकार करते हैं । इस प्रकार दोनों ही कवियों में इस विषय पर पर्याप्त मतभेद है । इस संदर्भ में हमारा विनम्र मत यह है कि निराला जी ने उपर्युक्त बातें कहीं हैं वे केवल स्वच्छन्द छन्द या मुक्त छन्द के लिए ही हैं जिसकी संख्या छायावादी काव्य में बहुत ही कम है । निराला जी की बातें सम्पूर्ण छायावादी काव्य पर नहीं लागू होती, क्योंकि छायावादी काव्य में अधिकांश ऐसे भी छन्द हैं जो छन्दशास्त्र के अविकल नियमों को न मानते हुए भी नियम और लय से बंधे हैं । निराला जी ने इस प्रकार के छन्दों को अलग रखते हुए मुक्त छन्द पर अपनी दृष्टि से विचार किया है और इसी कारण दोनों कवियों के मुक्त छन्द के विवेचन में इतना अन्तर पड़ गया है । निराला जी की इन बातों के सम्यक साक्ष्य - स्वरूप हम उन्हीं के उद्धरण प्रस्तुत करते हैं :-

' इसके (परिमल के) मैंने तीन खण्ड किये हैं । प्रथम खण्ड में सम मात्रिक सान्त्यानुप्रास कविताएं हैं, जिसके लिए हिन्दी के लक्षण ग्रन्थों के द्वारपालों को ' प्रवेश निषेध ' या ' भीतर जाने की सख्त मुमानियत है ' कहने की शायद न होगी दूसरे खण्ड में विषम मात्रिक सान्त्यानुप्रास कविताएं हैं । इस ढंग के साथ मेरे ' समवायश्च सखा मत: ' या ' एकक्रियं भवेन्मित्र ' सुकुमार कवि मित्र पंत जी के ढंग का साम्य है, यह भी उसी तरह ह्रस्व दीर्घ मात्रिक संगीत पर चलता है । पंत जी के छन्दों में स्वर की बराबर लड़ियां या सम मात्राएं अधिक मिलती हैं, इसमें बहुत कम - प्राय: नहीं । ह्रस्व

---

१ - प्रबन्ध पद्म : प्रथमावृत्ति : पृष्ठ ६१ ।

दीर्घ मात्रिका संगीत का मुक्त रूप ऐसा ही होगा, जहां स्वर के उत्थान तथा पतन पर ही ध्यान रहता है और भावना प्रसारित होती चली जाती है।'[१] यहां 'निराला जी ने जिसे 'विषम मात्रिक सान्त्यानुप्रास छन्द कहा वही पंत जी स्वच्छन्द छन्द या मुक्त छन्द कहा है। यहां विषम मात्रा - क्रम और संगीतात्मकता की स्वीकृति है। निराला जी इन दोनोंको गीति काव्य का आवश्यक गुण मानते हैं न कि स्वच्छन्द काव्य का। उन्होंने अपने काव्य में स्पष्ट भेद - स्थापना कर दिया है:-

'पंत जी की कविताओं में स्वच्छन्द छन्द की एक लड़ी भी नहीं, परन्तु जब वह कह उठते हैं 'पल्लव में मेरी अधिकांश रचनाएं इसी छन्द में है जिनमें 'उच्छ्वास', 'आंसू' तथा 'परिवर्तन' विशेष बड़ी हैं।' यदि गीतिकाव्य और स्वच्छन्द छन्द दोनों की विशेषताएं पंत जी को मालूम होतीं तो वह ऐसा न लिखते। यदि यथार्थ दृष्टि से उनकी पंक्ति की जांच की जाय, तो कहना होगा कि उनकी इस तरह की पंक्तियां -

दिव्य स्वर या आंसू का तार
बजा दे हृदयोद्गार।

जिसकी संख्या अब तक की प्रकाशित कविताओं में थोड़ी है - विषम मात्रिक होने पर भी गीतिकाव्य की परिधि को पारकर स्वच्छन्द छंद की निराधार नंदन भूमि पर पैर नहीं रख सकती। इस तरह की पंक्तियों में छन्द की मात्राओं से पहले संगीत की मात्राएं सूझ जाती हैं।--------दूसरे स्वच्छन्द छन्द में 'तार' और 'गार' के अनुप्रासों की कृत्रिमता नहीं रहती - वहां कृत्रिम तो कुछ है ही नहीं। यदि कारीगरी की गयी, मात्राएं गिनी गईं, लड़ियों के बराबर रखने पर ध्यान रखा गया, तो इतनी बाह्य विभूतियों के गर्व में स्वच्छन्दता का सरल सौन्दर्य, सहज प्रकाशन निश्चित है कि नष्ट हो जाता है।'[२]

---

१ - परिमल की भूमिका : पृष्ठ ८-९।

२ - प्रबन्ध पद्म : पृठ ९०-९१।

अतः निराला जी ने पंत जी के काव्य को गीतकाव्य माना है परन्तु पंत जी ने मुक्त काव्य और गीतिकाव्य में अन्तर नहीं माना है। इन्हीं मतभेदों के उलझनों में पड़कर आलोचकों ने पंत जी के काव्य में स्वच्छन्द छन्द और निराला के काव्य में मुक्त छन्द या मुक्तकाव्य का अवलोकन किया।[१]

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि निराला जी स्वच्छन्द काव्य में एकदम नियम - साहित्य मानते हैं, उसमें संगीतात्मकता नहीं, प्रवाह और पठन कला है, कृत्रिमता नहीं, नैसर्गिक प्रवाहमयता है और स्वर नहीं व्यंजन प्रधानता मुख्य है।

पंत और निराला के मुक्त छन्द विषयक दृष्टिकोणों के आधार पर हम कह सकते हैं कि दोनों ने ही स्वच्छन्द काव्य की रचनाएं की है। दोनों की रचनाएं स्वच्छन्द काव्य के अन्तर्भूत हैं केवल उनमें प्रकार भेद है। तात्पर्य यह कि पंत का स्वच्छन्द छन्द एक प्रकार का और निराला का दूसरे प्रकार का है। उन्हें स्वच्छन्द काव्य या गीतकाव्य और मुक्त काव्य के नामकरण करके अलग-अलग नहीं मानना चाहिए, कारण कि दोनों का आधार लयात्मक प्रवाह ही है। मुक्त छन्द के प्राण है - लय। चाहे वे वर्णिक हो या मात्रिक। यह लयाधार ही मुक्त छन्द को छन्द की भूमि में रखता है। मुक्त छन्द भी तो आखिर छन्द ही है। अतः लय तथा अनुप्रासादि भी उसमें रहते ही हैं। निराला ने ठीक ही कहा है कि मुक्त छन्द तो वह है जो छन्द की भूमि में रहकर भी मुक्त है। छायावादी कविता में वर्णिक तथा मात्रिक छन्दों के अनुसार वर्णिक लयाधार तथा मात्रिक लयाधार वाले मुक्त छन्दों का प्रयोग हुआ है।[२] इन दोनों - वर्णिक और मात्रिक - लयाधारों का विस्तृत अध्ययन कुछ शोधकर्ताओं ने कर डाला है, अतः यहां केवल इनकी ओर संकेत कर दिया गया है।

---

१ - अवलोकनीय - (क) डा० श्री कृष्ण लाल का 'आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास' पृष्ठ १३२ - १३६, तृतीय संस्करण।
(ख) मनमोहन अवस्थी : आधुनिक हिन्दी काव्य शिल्प, पृष्ठ १८४-१८५, प्र० सं०।

२ - हिन्दी की छायावादी कविता का कला विधान : पृष्ठ ३०७, प्र० सं०।

निष्कर्ष :

कुल मिलाकर, छायावाद ने छन्दों की प्रचलित प्रणाली को आमूल बदल दिया। छायावादी कवियों ने छन्दों में मात्राओं से अधिक महत्व प्रसार तथा स्वर संगीत को दिया।[१] छायावादी छन्दों के प्रमुख वैशिष्ट्य हैं :- वर्णिक की अपेक्षा मात्रिक छन्दों का प्रयोग, सम छन्दों को अर्द्धसम रूप देना, नये प्रकार के सम तथा अर्द्धसम छन्दों की रचना और विभिन्नछन्दों के विषम - चरणों के क्रमायोजन द्वारा छन्द की एक अभिनव इकाई बनाना आदि। 'मुक्त छन्द' छायावाद की एक विशिष्ट देन है। इन 'मुक्त छन्दों में कहीं अन्त्यानुप्रास का प्रयोग है और कहीं नहीं। इनमें कहीं वर्णिक लयाधार है तो कहीं मात्रिक। सबसे बड़ी बात यह है कि ये छन्द वर्ण और मात्रा से अधिक लयाश्रित हैं। छायावादी छन्दों पर आंग्ल और बंगला प्रभावों के अतिरिक्त उर्दू का भी प्रभाव है। ये लोक गीतों की शैली से भी प्रभावित हैं। छायावादी कवियों ने विभिन्न प्रभावों को आत्मसात् करके छन्दों के अभिनव प्रयोग करते हुए उन पर अपनी मौलिकता की छाप लगा दी है।[२]

---

१ - रश्मि बंध : परिदर्शन : पृष्ठ २३।

२ - हिन्दी की छायावादी कविता का कला विधान : डा० बलवीर सिंह 'रत्न', पृष्ठ ३१५।

काव्य रूप (फार्म) :

कवि की विशिष्ट अनुभूति जब छन्दों के माध्यम से विशिष्ट शैली में प्रकट होकर, विशिष्ट रूप में अभिव्यंजित होती है, तो उस अभिव्यंजित रूप विशेष को काव्य रूप की संज्ञा प्राप्त होती है।[१] काव्य रूपों के संबंध में भारतीय और पाश्चात्य दृष्टिकोणों में पर्याप्त अन्तर है।

भारतीय दृष्टि :-

प्राचीन भारतीय साहित्याचार्यों ने काव्य के दो भेद माने हैं :- श्रव्य और दृश्य काव्य। आधुनिक युग में काव्य के ये भेद नहीं रह गये हैं। आज श्रव्य काव्य के स्थान पर पाठ्यकाव्य अधिक प्रयुक्त है। एक तो आधुनिक युग में श्रव्य काव्य होता ही नहीं, दूसरे लोक गीतों आदि में मिलने वाले उसके अस्तित्व का महत्व नहीं, और तीसरे लिपि और मुद्रणों के कारण उसका रूप भी लुप्तप्राय है। दृश्य काव्य का संबंध गद्य से अधिक है जो आधुनिक युग में काव्य परिधि में नहीं आता। आज तो 'काव्य' का अर्थ हम 'श्रव्य काव्य' के पद्य रूप से लेते हैं। प्राचीन आचार्यों ने पद्य के २ वर्गीकरण किए - प्रबन्ध और मुक्तक। प्रबन्ध काव्य में महाकाव्य और खण्ड काव्य तथा मुक्तक के पाठ्य और गेय भेद किए गये। संस्कृत के प्राचीन काव्य शास्त्रियों ने मुक्तक के भेद शैली के आधार पर किये हैं। आधुनिक युग में मुक्तकों के वर्गीकरण में पर्याप्त मत-भेद है। इस सन्दर्भ में श्री जितेन्द्र नाथ पाठक और डा० शम्भूनाथ सिंह के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। अत्यन्त संक्षेप में, भारतीय दृष्टि के अनुसार ये मुख्य काव्य रूप हैं :-

१ - प्रबन्ध काव्य - क- महाकाव्य और ख - खण्ड काव्य

२ - मुक्तक काव्य - क - गेय और पाठ्य अथवा क - विषयक प्रधान और विषयी प्रधान

---

१ - काव्य रूपों के मूल स्त्रोत और उनका विकास : डा० शकुन्तला दूबे : प्राक्कथन।

पाश्चात्य दृष्टि :

काव्य के दो प्रमुख भेद किये गये :-

१ - विषयीगत (सब्जेक्टिव) और
२ - विषयगत (आब्जेक्टिव)

विषयीगत के अन्तर्गत - संबोधन गीति (ओड), शोक गीति (इलिजी), पत्रगीति (एपिसिल), आध्यात्मिक गीति (फिलोसोफिकल लिरिक), वर्णनात्मक गीत (डिस्क्रीप्टिव पोएट्री) और व्यंग्य गीत (सेटायर) आदि छः भेद किये गये हैं।

विषयगत कविता के वर्णनात्मक (नेरेटिव) और नाट्यकाव्य (ड्रामेटिक पोएट्री) दो भेद हुए। वर्णनात्मक में - महाकाव्य (एपिक), वीर गीत (बैलड), रोमांचकारी कविता (रोमान्स) और यथार्थवादी कविता (रियलिस्टिक पोयेट्री) आते हैं। नाट्यकाव्य में तीन आते हैं :- नाट्यगीत (ड्रामेटिक लिरिक), नाट्यकथा (ड्रोमेटिक स्टोरी) तथा नाट्यस्वगत (ड्रोमेटिक सालीलोकी)।

इस प्रकार भारतीय और पाश्चात्य दृष्टि से काव्य रूपों के संबंध में पर्याप्त भेद हैं। चूंकि छायावादी कवियों की स्वच्छन्द दृष्टि से काव्य रूपों के संबंध में पर्याप्त भेद हैं। चूंकि छायावादी कवियों की स्वच्छन्द दृष्टि इन दोनों पर पड़ी, इस लिए भारतीय और पाश्चात्य दोनों ही काव्य रूपों का समावेश इस काव्य में हुआ।

छायावादी काव्य रूप :

रीतिकालीन क्रोड़ को छोड़कर हिन्दी कविता भारतेन्दु और द्विवेदी युगों में धीरे - धीरे कैसे स्वच्छन्द और अन्तर्मुखी हो रही थी, यह हम देख चुके हैं। काव्य की इस अन्तर्मुखता का प्रभाव काव्य रूपों पर भी पड़ा और उनमें परिवर्तन हुए। इसके अतिरिक्त छायावादी काव्य की विद्रोहात्मकता और पाश्चात्य प्रभाव ने भी छायावादी काव्य रूपों के परिवर्तन और निर्माण में पर्याप्त सहयोग प्रदान किया।

नूतन काव्य रूप हमारे समक्ष आये, जिनमें निम्नांकित प्रमुख हैं :-

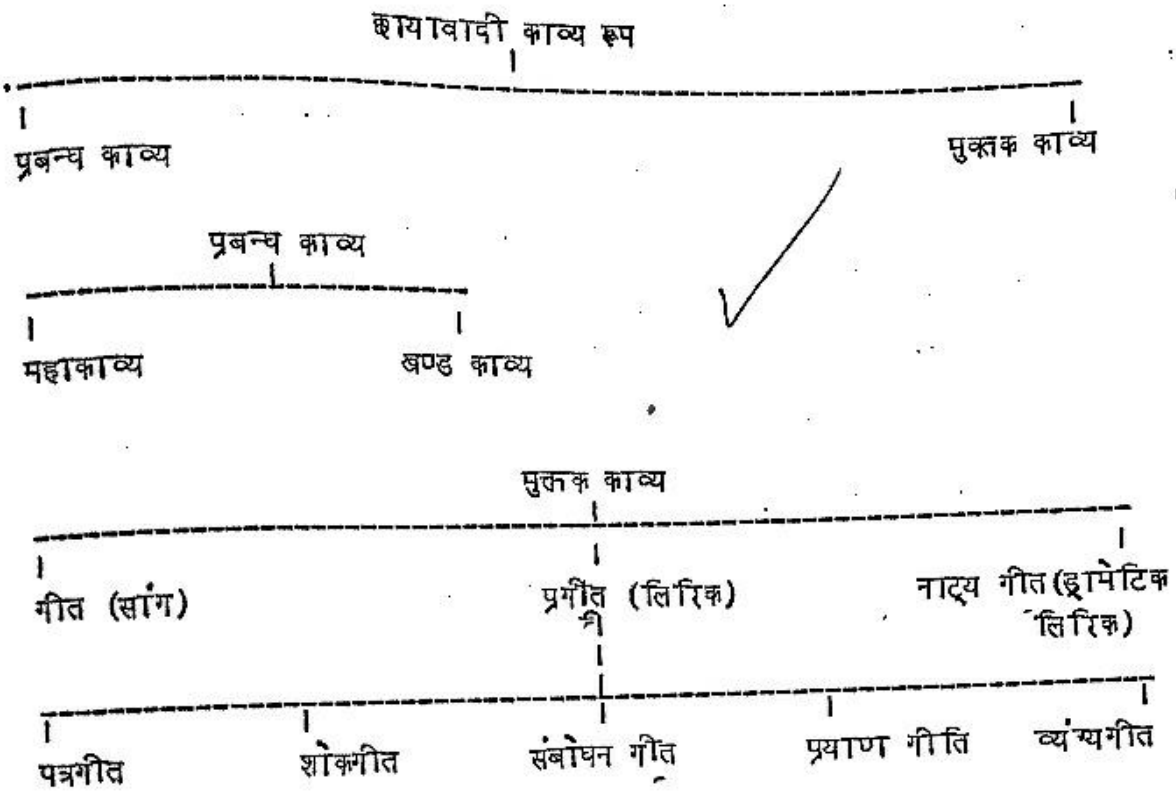

१ - प्रबन्ध काव्य - इसके दो भेद हैं :-

क - महाकाव्य और ख - खण्ड काव्य

क - महाकाव्य की स्वरूप - विषयक प्राचीन मान्यतायें और छायावाद भारतीय दृष्टि:-

महाकाव्य - विषयक प्राचीन विवेचकों में भामह [१], दण्डी [२], भोज [३] तथा विश्वनाथ [४] प्रमुख हैं। विश्वनाथकृत 'साहित्य दर्पण' को 'सर्गबन्धों महाकाव्य' आदि

१ - भामह, काव्यालंकार, प्रथम परि०, श्लोक १८-२३।
२ - दण्डी, काव्यादर्श, सं० एम० रंगाचार्य, श्लोक १४-१६, पृष्ठ ११-१२।
३ - डा० नगेन्द्र : भारतीय काव्यशास्त्र की परम्परा : पृष्ठ २६२-२६३।
४ - विश्वनाथ : साहित्य दर्पण : श्लोक सं० ३१४-३२४, पृष्ठ ६३३-६३६, सं० श्रीकृष्ण मोहन ठाकुर।

पंक्तियों के अनुसार महाकाव्य में निम्नांकित बातें होती हैं :-

(१) महाकाव्य सर्गबद्ध होता है (२) नायक देवता, धीरोदात्त गुणोपेत या सद्भाव क्षत्रिय हो (३) श्रृंगार, वीर, शान्त में कोई एक अंगीरस हो (४) नाटक की संधियों से युक्त हो (५) वृत्त ऐतिहासिक या लोक - प्रसिद्ध हो (६) पुरुषार्थ चतुष्टय में से एक फल हो)७) प्रारम्भ में नमस्कार, आशिर्वाद या वस्तु निर्देश हो (८) यत्र - तत्र खल निन्दा या सज्जन गुणगान हो (९) आठ से अधिक (अत्यल्प या अनल्प) सर्ग हो। प्रत्येक सर्ग में एक छन्द, संगीत में भिन्न का प्रयोग और भावी कथा की सूचना हो। १०) सन्ध्या, सूर्य, चन्द्रमा, रात्रि, प्रदोष, ध्वान्त, दिन, प्रातः, मध्यांह, मृगया, पर्वत, वन, ऋतु, समुद्र, संयोग, वियोग, मुनि, स्वर्ग, नगर, यज्ञ, संग्राम, विवाह, यात्रा, मन्त्र, पुत्र और अभ्युदय आदि का सांगोपांग वर्णन हो। (११) महाकाव्य का नामकरण कवि के चरित्र अथवा नायक के नाम पर होना चाहिए। कहीं इनसे भिन्न नाम होता है। (१२) सर्ग का नाम उसके वर्णनीय कथा के नाम पर होता है।

आधुनिक युग के पूर्व तक ये ही प्रमुख विवेचक आचार्य हुए। इस युग में इस विषय पर विस्तृत विवेचन नहीं मिलता। कतिपय आलोचकों ने प्रसंगवश अपने निबंधों में महाकाव्य के रूप में प्रकाश डाला है -
आचार्य रामचन्द्र शुक्ल (जायसी ग्रन्थावली की भूमिका), श्यामसुन्दरदास (साहित्यालोचन) विश्वनाथ प्रसाद मिश्र (वाङ्मय विमर्श) राम दहिन मिश्र (काव्य दर्पण), गुलाब राय (काव्य के रूप), कन्हैयालाल सहल (आलोचना के पथ पर), नन्ददुलारे वाजपेयी (आधुनिक साहित्य)।

पाश्चात्य दृष्टि :-

अरस्तू ने अपने काव्य शास्त्र (पोयेटिक्स) में लिखा है कि - महाकाव्य ऐसे उदात्त व्यापार का काव्यमय अनुकरण है जो स्वतः गम्भीर एवं पूर्ण हो, वर्णनात्मक हो, सुन्दर शैली में रचा गया हो, जिसमें आद्यन्त एक ही छन्द हो, जिसमें एक ही कार्य हो जो पूर्ण हो, जिसमें आरम्भ, मध्य और अंत हो, जिसके आदि और अंत एक दृष्टि में समा सकें, जिसके चरित्र श्रेष्ठ हों, कथा सम्भावनीय हो और जीवन के किसी एक सार्वभौम

सत्य का प्रतिपादन करती हो ।'[१] अरस्तू के पश्चात् न तो थियोफ्रेस्टस, डायोनीशश, प्लूटार्क आदि ग्रीक आचार्यों तथा न तो सिसरो, होरेश, क्विंटिलीयन, दान्ते आदि लेटिन आचार्यों ने ही महाकाव्य पर विचार किया ।[२] क्रोचे, कालरीज, हीगेल प्रभृति ने भी इस पर विचार नहीं किया । आधुनिक युग में एवरक्रोम्बी, डिक्शन और टिलयार्ड ने महाकाव्य के स्वरूप पर प्रकाश डाला है ।

एबरक्रोम्बी के अनुसार मानव जीवन के साथ महाकाव्य का विकास होता है । महाकाव्य कि विकासात्मक और साहित्यिक दोनों होता है । कथा महान, पुरातन, परम्परानुमोदित और युग ग्राह्य होती है । नायक कई हो सकते हैं । प्रभावोत्पादकता के लिए अतिप्राकृतिक प्राणियों (सुपर नेचुरल बींग्स) का होना उत्तम है ।[३]

डिक्शन के मत से वीर काव्य (हीरोइक पोयेट्री) महाकाव्य का प्रारम्भिक रूप है और अनुकरणात्मक (इमिटेटिव) कुछ विकसित । महाकाव्य की गरिमा व महत्व उसके स्थान विस्तार पर निर्भर है । महाकाव्य का नायक केवल एक व्यक्ति नहीं, वरन् वह राष्ट्रीय गौरव का प्रतीक है, अतः उसे सर्वजयी होना चाहिए । महाकाव्य के वीरकाव्य (हीरोइक पोयेट्री), अनुकरणात्मक महाकाव्य (इमिटेटिव एपिक), विकासात्मक महाकाव्य (आथेन्टिक एपिक), साहित्यिक कृत्रिम महाकाव्य (लिटरेरी या आर्टीफिशियल एपिक) आदि रूप हैं ।[४]

टिलयार्ड ने महाकाव्य में तीन गुणों की अपेक्षा की है - प्रकथनात्मकता विश्वजनीन गाम्भीर्य और विधायात्मकता या निश्चयात्मकता । वीर काव्य और महाकाव्य में अंतर है । महाकाव्य के विकासात्मक (आथेन्टिक) और कृत्रिम (आर्टीफिशियल) भेदों को वह नहीं मानता ।[५]

---

१ - काव्य रूपों के मूल स्त्रोत और उनका विकास : पृष्ठ ८३ ।
२ - ए हिस्ट्री आफ इंग्लिश क्रिटिसिज्म : जी सेन्टकरी : पृष्ठ ७ - २४ ।
३ - एपिक : एबरक्रोम्बी : पृष्ठ ३२, ४८, ६५ और ६६ ।
४ - डब्ल्यू० एम० डिक्शन : इंग्लिश एपिक एण्ड हीरोइक पोयेट्री, पृष्ठ १४,१५,१६,१७ ।
५ - इ० एम० डब्ल्यू० टिलयार्ड : दी इंग्लिश एपिक एण्ड बैकग्राउन्ड : पृष्ठ १,४,५ ।

छायावादी महाकाव्य कामायनी :

प्रसादकृत 'कामायनी' छायावाद - युग का सर्वश्रेष्ठ एवं एक मात्र महाकाव्य है। इसकी कथावस्तु अत्यन्त सरल एवं ऐतिहासिक है। जल प्लावन के पश्चात् मनु - श्रद्धा का मिलन, सहवास, श्रद्धा का परित्याग कर मनुका सारस्वत प्रदेश गमन, इड़ा के प्रति आकर्षण, उसके साथ बलात्कार-चेष्टा, प्रजा का विद्रोह, मनु का घायल होना, श्रद्धा द्वारा मनु की खोज व मिलन, हिमालय - यात्रा, त्रिलोक - दर्शन और आनन्द प्राप्ति बस इतना ही कथा का कलेवर है। इस संक्षिप्त कलेवर के आधार पर इसे महाकाव्य नहीं कह सकते परन्तु कृतिकार ने अपनी नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा के बल पर एक विस्तृत कथा पट को बुना है जो मानव सभ्यता के प्रारम्भिक दिनों से लेकर आधुनिक वैज्ञानिक युग तक प्रसृतुत है। एक ओर जहां युग-बोध की समस्त आड़ी-तिरछी रेखाएं रेखाएं, काव्य बोध के सूक्ष्मातिसूक्ष्म संवेदन, प्रगीतात्मकता, नवीन शब्द संयोजन, अर्थ-गारिमा, कल्पना की गहन उड़ान और अन्तःतन्मयता - 'कामायनी' में सुरक्षित हैं, वहीं उससे ऊपर उठकर एक पूर्ण दर्शन की परिकल्पना और स्थापना भी प्रसाद जी ने की है। कामायनी में मनु और श्रद्धा की कथा आधिकारिक और कामआकुलि - क्लांत - मानव की कथाएं प्रासंगिक हैं। स्वल्प कथा वस्तु से वस्तु विन्यास में शिथिलता आयी है। परन्तु कवि की कल्पना ने रोमान्टिक तत्वों के समावेश द्वारा उसमें एक अद्भूत आकर्षण उत्पन्न कर दिया है।

'कामायनी' की कथावस्तु में नाट्य संधियों का पर्याप्त निर्वाह है। मनु की चिन्ता और आशा का उदय उसका प्रारम्भ है। श्रद्धा का मिलन, मनु का पलायन और सारस्वत प्रदेश में राज्य - स्थापना ही प्रयत्न है। प्रत्याशा रूप में श्रद्धा द्वारा मनु की खोज, मिलन और आश्वासन अंकित हैं। हिमालय - यात्रा, त्रिलोक दर्शनादि नियताप्ति और आनन्द उपलब्धि एवं लोक - मंगल - कामना फलागम है।

छायावाद स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह और इसकी झलक 'कामायनी' में सर्वत्र है। कथावस्तु की स्थूलता अत्यन्त अल्प और सूक्ष्मता एक - एक पंक्ति में है। सर्गों का नामकरण चिंता, आशा, श्रद्धा आदि वृत्तियों के आधार पर हुआ है। मानव मन के विकास की श्रृंखला में लज्जा, काम आदि का मनोवैज्ञानिक चित्रण हिन्दी में ही नहीं अपितु विश्व साहित्य में अप्रतिम है। यहां मनु, श्रद्धा और इड़ा क्रमशः मन, हृदय और बुद्धि के प्रतीक हैं। यह तीन प्राणियों के तीन मनों की कहानी है - और भी विवेचन करें तो केवल एक मन की। यह मन सबका अपना है।[१]

शिल्प की दृष्टि से 'कामायनी' में विद्रोहात्मकता है। यहां महाकाव्यों के आदो नमस्क्रियाशीर्वा वस्तु निर्देश एव च ' का परिपालन नहीं है। भाषा, अलंकार, छन्दों में नवीनता, रूपक, प्रतीक और लाक्षणिक विधान भी यहां द्रष्टव्य हैं। 'कामायनी' के चरित्र चल - चित्र के कोरे पटल पर शनैः शनैः उभरते हुए अस्पष्ट भावों के स्पष्ट चमकते हुए मूर्त चित्रण है। कामायनी का चरित्र चित्रण कवि की विदग्ध भावुकता, दार्शनिक मनीषा, ऐतिहासिक ज्ञान, तथा मनोवैज्ञानिक चिन्तन के फलस्वरूप एक विशेष गाम्भीर्य लिए हुए हैं। आकुलि और किलात मांसलता के प्रतीक हैं तो काम, लज्जा आदि अमांसलता एवं अभूर्तता के। मनु नायक और श्रद्धा नायिका है। खल नायक के लिए यहां स्थान नहीं है। अतिमानवीय (सुपर ह्यूमन) चरित्रों के लिए यहां अवकाश नहीं है। इस प्रकार चरित्र चित्रण में भी एक नवीन स्वतंत्र मार्ग का अनुकरण है।

'कामायनी' के शैली - शिल्प में वस्तु - व्यंजना नहीं भाव व्यंजना है। यहां भाव - व्यापार की सफल अभिव्यक्ति प्रगति - पद्धति द्वारा की गयी है। 'कामायनी' की शैली में महाकाव्योचित गाम्भीर्य, औदात्य एवं प्रौढ़ता है। संक्षेप में, छायावादी कला-शिल्प के निर्मायक समस्त तत्वों - लक्षणा, वायवीकरण, वक्रता, चित्रात्मकता, प्रतीकात्मकता, रूपकत्व और मानवीकरण आदि का समावेश हुआ है।

---

१ - कामायनी की टीका : विश्वम्भर मानव : पृष्ठ १७, सं० प्रथम।

इस प्रकार वर्ण्य और शिल्प दोनों दृष्टियों से ही ` कामायनी ` छायावादी काव्य की अमरकृति और अप्रतिम महाकाव्य है । वस्तुत: ` कामायनी ` मर्त्यलोक की वह त्रिपथगा है जिसका उद्गम हिमवान की उन शिला संधियों से होता है जिस पर चिन्ता-कातर मनु बैठा रहता है, और वह जीवन के वर्षा - शीत - आतप - तापित उबड़-खाबड़ मरुभूमि को सिंचित करती हुई उस अनन्त सागर में निमज्जित होती है जिसमें काम की चिर-तृप्ति है, मानस की अनुभूति परक गहराइयां एवं छायावादी कला की अनमोल निधियां हैं ।

कुल मिलाकर, ` कामायनी ` छायावादी महाकाव्य का चूड़ान्त निदर्शन है । ` कामायनी ` की कथावस्तु में भौतिक विस्तार का अभाव देखकर उसके महाकाव्यत्व का निषेध करना आधुनिक काव्य की मूलवृत्ति से अनभिज्ञता प्रकट करना है ।[१]

(ब) खण्ड काव्य :

१ - तुलसीदास - निराला की इस विश्रुत कृति में तुलसी की प्रिया - आसक्ति, उसी द्वारा भक्ति-निर्देश जैसी एक स्थूल एवं अल्प कथावस्तु द्वारा एक अत्यन्त उदात्त खण्ड काव्य की सृष्टि की गयी है । यहां स्थूलता कम परन्तु सूक्ष्मता अधिक है । प्रारंभ भारतीय संस्कृति के पतनोन्मुख काल से हुआ है । अंत में पुष्कल रवि-रेखा है । यहां छायावाद का अत्यन्त पुष्ट और विकसित रूप उपलब्ध होता है । तुलसीदास के चरित्र में महाकाव्योचित गरिमा है । चरित्रांकन के लिए नाटकीय कथोपकथन की शैली का आलम्बन लिया गया है ।

२ - राम की शक्ति पूजा - निराला जी की अत्यन्त महत्वपूर्ण यह रचना अंग्रेजी साहित्य के चाइल्ड हेराल्ड, प्रीत्यूड आदि कोटि की एक प्रलम्ब कविता (लांग वर्स) है । इसका वर्ण्य राम - रावण युद्ध का एक प्रसंग है । लंकाधिपति रावण द्वारा राम की वानर - मल्ल सेना का संहार, राम की निराशा, शिविर आगमन, चित्त की उद्वेगावस्था उद्वेगावस्था में अपने मनोदेश में सीता का दर्शन, हनुमान का महाकाश में पहुंचना,

---

१ - कामायनी के अध्ययन की समस्याएं : पृष्ठ ६ ।

अंजनारूपा शक्ति द्वारा उनकी वर्जना, राम की शक्ति - उपासना, शक्ति द्वारा राम की परीक्षा, राम की सफलता, और प्रसन्न शक्ति का राम के वदन में लीन होना - यही इस खण्ड काव्य की कथावस्तु है । छायावादी कविता की मनोजगत की सूक्ष्मता, प्रतीकात्मक शैली और काल्पनिकता आदि विशिष्टताएं यहां दर्शनीय हैं । भाषा समास- बहुला, ओजो - गुण - मंडिता एवं छंद निराला की स्वतंत्र प्रकृति का परिचायक है ।

३- ग्रन्थि - `वास्तव में यह गीतिकाव्य ही है, उसे खण्ड काव्य कहना उसके समझने में बाधक होगा ।`[१] डा० नगेन्द्र ने इस रचना को खण्ड काव्य ही माना है । हमारे विनम्र मत से `ग्रन्थि` को प्रगीतात्मक खंड काव्य कहना अधिक समीचीन होगा।[२] मधुमास की एक संध्या को ताल में नायक की नाव डूब जाती है, वह मूर्च्छित हो जाता है, चेतनावस्था में लौटने पर एक शशिमुखी के प्रणय-पाश में बंधने, सामाजिक नियंत्रणा के कारण दोनों का वियोग और नायक का वेदनानुभव - ही इस रचना का विषय है । इसमें पंत जी की अमर कल्पना - विलास, भावोच्छ्वास, सौन्दर्य-विलास और वैयक्तिकता की प्रभूतता है । प्रगीत तत्त्व का आतिथ्य भी यहां है ।

४ - लहर (कथात्मक अंश) - इस काव्य - संग्रह की तीन कविताएं - शेरशाह का शस्त्र समर्पण, पे शोला की प्रतिध्वनि और प्रलय की छाया खण्ड काव्य में गिनी जाती हैं ।

छायावादी मुक्तक काव्य :

भारतीय दृष्टि :-

`साहित्य दर्पणकार पं विश्वनाथ ने मुक्तक का परिचय इस प्रकार दिया है :

छन्दोबद्ध पदं पद्यं तेन मुक्तेन मुक्तकम् ।
द्वाभ्यां तु युग्मकं सान्दानतिकं त्रिभिरिष्यते ।
कलापकं चतुर्भिश्च पंचभिः कुलकं मतम् ।[१]

१ - पं० विश्वनाथ : साहित्य दर्पण : षष्ठ परिच्छेद, श्लोक ३१४, पृष्ठ ६५८, पृष्ठ ६३१, सं० पं० कृष्णमोहन ठाकुर ।

अर्थात् छन्दबद्ध पद को पद्य, उससे मुक्त मुक्तक होता है । इनके युग्मक, सन्दानितक, कलापक और कुलक भेद हैं जो क्रमश: दो - दो, तीन - तीन, चार - चार और पांच - पांच मुक्तकों के समूह होते हैं । आनन्दवर्द्धन, वामन, भामह, अभिनव गुप्त और आचार्य दण्डी प्रभृति काव्याचार्यों ने भी इस पर विचार किया है ।

पाश्चात्य दृष्टि :-

पिछले पृष्ठों में हमने विषयीगत काव्य की जिक्र की है । इस विषयीगत कविता को गीतिकाव्य भी कहते हैं । यहां गीतिकाव्य के संबोधन गीति, शोक गीति, पत्र गीति, आध्यात्मिक गीति, वर्णनात्मक गीत और व्यंग्य गीत आदि छ: भेद किए गए हैं ।

छायावादी मुक्तक - ये प्रधानत: दो प्रकार के हैं - गीत मुक्तक और प्रगीत मुक्तक । इनमें से प्रथम अंग्रेजी के ` सांग ` और द्वितीय ` लिरिक ` के अधिक समीप हैं ।

छायावादी गीत मुक्तक - यह अंग्रेजी के ` सांग ` का पर्याय है । ये भारतीय वैष्णव पद शैली या भजन - पद्धति के अधिक समीप हैं ।

प्रसाद के ` झरना ` संग्रह कुछ कविताएं ऐसी हैं जो गीत या सांग शैली की कही जा सकती है । ` झरना ` के अन्त में ` बिन्दु ` शीर्षक कुछ कविताएं हैं जिनमें प्रथम को छोड़कर शेष ५ पद शैली पर आधृत हैं । ` लहर ` में वैष्णवभजन शैली का एक भी गीत नहीं । ` आंसू ` तो प्रगीत काव्य है । ` कामायनी ` के इड़ा सर्ग में पद शैली के गीत मिलते हैं । प्रसाद के नाटकों में भी यत्र-तत्र पद शैली के गीत हैं ।

पंत की रचनाओं में वैष्णव भजन पद्धति के पद या गीत नहीं हैं । निराला की गीतिका में केवल दो गीत इस शैला के हैं । महादेवी वर्मा की ` नीरजा ` में क्या पूजा क्या अर्चन रे ` नामक गीत इसी कोटि का है । डा० रामकुमार वर्मा ने भी एकाधपदों की रचना इस शैली में किया है अन्यथा उन्होंने प्रगीत मुक्तकों की नवीन पद्धति का ही अनुसरण किया है ।

इन छायावादी गीतों में शास्त्रीयता की अपेक्षा तो है पर कहीं - कहीं उसकी उपेक्षा भी है । यहां कवियों ने अपनी स्वच्छन्द प्रकृति का भी परिचय दिया है । इन गीत मुक्तकों में अध्यान्तरिकता (सब्जेक्टिविटी), वैयक्तिकता, भावात्मकता के भी संदर्शन होते हैं । भजन या पद शैली के ये गीत छायावादी काव्य में बहुत कम हैं और छायावादी कवियों ने गीत - मुक्तक रचना की एक नई पद्धति का आविष्कार किया है ।[१]

<u>छायावादी प्रगीत मुक्तक</u> - छायावादी अन्तर्मुखीनताजन्य वैयक्तिकता की अतिशय झलक हमें तद्युगीन प्रगीतों (लिरिक) में मिलती है । छायावादी गीतों में तो शास्त्रीयता का कुछ आग्रह है भी परन्तु इन प्रगीतों में तो वह बिलकुल है ही नहीं । इन प्रगीतों पर मुख्यत: अंग्रेजी रोमांटिक काव्य और गौणत: बंगला एवं उर्दू के मुक्तक काव्य रूपों का प्रभाव है । शैली के आधार पर छायावादी प्रगीतों के निम्नांकित वर्गीकरण किये जा सकते हैं :-

१ - <u>आंग्ल पद्धति के प्रगीत</u> :-

क - संबोधन गीति(ओड) - प्रसाद - किरण, बसन्त, बोलो द्वार, अर्चना, बालू की बेला, प्रियतम, कहो १ प्रार्थना आदि ।

पंत - भावी पत्नी के प्रति, मधुवन, विहग के प्रति, अप्सरा (गुंजन), विनय, वीचि - विलास, मधुकरी, अनंग, छाया, शिशु, नक्षत्र, सोने का गान, परिवर्तन, बादल आदि ।

निराला - सम्राट अष्टम एडवर्ड के प्रति, खंडहर के प्रति, प्रलाप, प्रेम के प्रति, प्रिया से, हिन्दी के सुमनों के प्रति, कविता के प्रति, बसन्त की परी के प्रति, तरंगों के प्रति, जलद के प्रति, प्रपात के प्रति, बादल राग, जागो फिर एक बार ।

---

१ - हिन्दी की छायावादी कविता का कला विधान : डा० बलवीर सिंह 'रत्न' : पृष्ठ ८१ ।

महादेवी वर्मा - धीरे - धीरे उतर क्षितिज से, मैं बनी मधुमास आली, मधुर मधुर मेरे जीपक जल, तुम मुझमें प्रिय, बताता जा रे अभिमानी, जाग-जाग सुकेशिनी री, हे चिर महान, प्रिय चिरन्तन है आदि प्रगीत ।

ख- शोक गीत (एलिजी) - सरोजस्मृति (निराला) ।

ग - चतुर्दशपदी (सानेट) -

प्रसाद - `प्रियतम` और `मोहन` (कानन-कुसुम)

निराला - सन्त कवि रविदास के प्रति, आचार्य शुक्ल जी के प्रति, श्रीमती विजयलक्ष्मी के प्रति और श्रीमती महादेवी वर्मा के प्रति (अणिमा) ।

डा० सुधीन्द्र ने प्रसाद के `स्वभाव` तथा `दर्शन` (झरना) को भी चतुर्दशपदी माना है ।

घ - व्यंग्य गीत (सेटायर) -

निराला - बनवेला, गर्म पकोड़ी, दान, मास्को डायलाग्स, कुकुरमुत्ता ।

पंत - ग्राम्या, ग्राम बधू, ग्राम देवता, आधुनिका ।

ङ - नाट्यगीत - (ओपेरा)

प्रसाद - करुणालय, महाराणा का महत्व ।

निराला - पंचवटी प्रसंग ।

पंत - ज्योत्सना ।[१]

च - पत्रगीत (एपिसिल) - निराला - महाराज शिवाजी का पत्र ।

छ - विचारात्मक (रिफ्लेक्टिव) गीत - महादेवी के गीत ।

२ - बंग - पद्धति के प्रगीत - छायावादी प्रगीत अंग्रेजी प्रगीतों से प्रभावित हैं, आंग्ल कविता का प्रथम प्रभाव बंगला काव्य पर पड़ा और वहां से हिन्दी कविता प्रभावित हुई ।

---

१ - वाचस्पति पाठक ने `प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी की सर्वश्रेष्ठ रचनाएं` में इसे काव्य रूपक `कहा है ।

प्रसाद - ` लेचल मुझे भुलावा देकर ` गीत रवीन्द्र के एक गीत से प्रभावित ।[१]

पंत - ` मम जीवन की प्रमुदित प्रात ` - (वीणा) रवीन्द्र की ` गीतांजलि ` के ` अन्तर मम विकसित कर ` से प्रभावित ।

३ - उर्दू शैली के गीत :-

प्रसाद - ` झरना ` की ` सुधा में गरल `, ` उपेक्षा करना ` कविताएं
आंसू - मर्सिया शैली ।

निराला - गीतिका (२६वां गीत) गजल शैली में ।
बेला की गजलें
` परिमल ` - नयन कविता में ` रुबाई शैली `
सरोजस्मृति - मर्सिया शैली ।

पंत - ` उच्छ्वास ` मार्सिया शैली ।

महादेवी - ` यामा ` की ` प्राण पिक प्रिय नाम रे कह ` में गजल का बदला हुआ रूप ।

४ - लोक गीतों की शैली के प्रगीत :-

महादेवी के गीत लोक गीतों की शैली पर हैं । महादेवी जी ने स्वयं लिखा है कि :-

` मेरे गीत अध्यात्म के अमूर्त आकाश के नीचे लोक गीतों की धरती पर पले हैं । ` यामा ` के प्रगीत इस संदर्भ में द्रष्टव्य हैं । ` मधुर पिक होले होले बोल ` में लोक गीतों की पुनरुक्ति शैली का प्रयोग है ।

---

१ - हिन्दी की छायावादी कविता का कला विधान : डा० बलवीर सिंह रत्न पृष्ठ १०६।
२ - हिन्दी की छायावादी कविता का कला विधान : डा० बलवीर सिंह रत्न पृष्ठ ११८

निष्कर्ष :

छायावादी काव्य के दो रूप हैं - प्रबन्ध और मुक्तक । प्रबन्ध काव्य के दो रूप है - महाकाव्य और खण्ड काव्य, `कामायनी` छायावादी युग का एक मात्र महाकाव्य है । `तुलसीदास`, `रामकी शक्ति पूजा` तथा `ग्रन्थि` छायावादी खण्ड काव्य हैं । छायावादी प्रबन्ध काव्यों की कथावस्तु सूक्ष्म एवं मनोवैज्ञानिक तथा रूप प्रगीतात्मक (लिरिकल) है । इन काव्य रूपों पर अंग्रेजी-बंगला तथा उर्दू के काव्य रूपों का भी प्रभाव है । नवीन काव्य रूपों का आविष्कार तथा प्राचीन काव्य रूपों का रूप - परिवर्तन छायावादी काव्य की अपनी मौलिकता है ।

७१

उपसंहार :

समस्त पूर्व निरूपण के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि छायावादी काव्यदृष्टि अन्तर्मुखी है। इससे पूर्व युगों में वह बहिर्मुखी थी। 'द्विवेदी युग में काव्यदृष्टि प्रचारात्मक और नैतिक सुधारवादी थी। राष्ट्रीय चेतना के प्रवाह में व्यक्तिगत अनुभूतियों की मर्मस्पर्शी अभिव्यंजना का प्राय: अभाव ही रहा। द्विवेदी-युग की इस काव्य-धारा के ठीक विपरीत छायावादी कवियों की मनोदृष्टि है। छायावादी कविता की मुख्य उपलब्धि अन्तर्मुखी मनोदशाओं का मार्मिक चित्रण है। इस प्रकार दो युगों की कविता में दो ध्रुवों का अन्तर है। एक की दृष्टि बहिर्मुखी है और दूसरे की अन्तर्मुखी।'[१] इसी तथ्य का प्रतिपादन डा० जनार्दन द्विवेदी अपने शोध - प्रबन्ध में इस प्रकार करते हैं :- 'छायावाद के पूर्ववर्ती कवियों की कविता में दृष्टि वाहर्मुखी थी। उनकी काव्य वस्तु अत्यन्त स्पष्ट और स्थूल थी। उसे उन्होंने सीधे सुस्पष्ट ढंग से चित्रित किया था। इसके विपरीत छायावादी कवि अन्तर्मुखी चेतना के कवि हैं। उनकी कविता गूढ़ मानसिक विचारों से समन्वित है। उन्हें मन का अन्तर्द्वन्द्व चित्रित करते हुए आत्मा के क्षेत्र की ओर बढ़ना था। फलस्वरूप उनकी कविताओं में लाक्षणिकता, सांकेतिकता, दुरूहता, प्रतीकात्मकता, स्वप्निलता, धूमिलता, अस्पष्टता और वायवीयता का आ जाना स्वाभाविक था।'[२]

छायावादी काव्य दृष्टि की यह अन्तर्मुखीनता उसे पूर्ववर्ती काव्य से एकदम पृथक् कर देती है। यही छायावादी काव्य के विविध वृत्तों का केन्द्र विन्दु है। दूसरे शब्दों में, छायावादी काव्य शतदल की वह एक मात्र ग्रंथि है जिससे अनेक दल खुलते हैं। इसी से छायावाद में व्यक्तिवाद का प्रचलन हुआ। कतिपय आलोचकों ने छायावाद को व्यक्तिवाद माना है। इस व्यक्तिवाद से उद्भूत हुई - भावात्मकता जिसे आलोचकों

---

१ - नया हिन्दी काव्य और विवेचना : डा० शम्भूनाथ चतुर्वेदी : पृष्ठ ६-१०।
२ - निराला काव्य का अभिव्यंजना शिल्प : डा० जनार्दन द्विवेदी : पृष्ठ २६।

ने अनुभूति की तीव्रता नाम दिया । आंग्ल - आलोचकों ने रोमांटिक काव्य के संदर्भ में इसे ही शार्पेन्ड में सिंबिलिटी कहा है जो हमारे विनम्र मत से छायावादी कविता का संबल प्राण है । अनुभूतियों से आन्दोलित होती है - कल्पना और कल्पना का संबल लेकर वह अपने वास्तविक रूप को अत्यन्त मनोरम रूप में व्यक्त करती है । इस प्रकार अनुभूति और कल्पना (शार्पेन्ड सेंसिबिलिटी और हाइटेन्ड इमेजिनेटिव फीलिंग) छायावादी काव्य के दो अन्योन्याश्रित पक्ष हो जाते हैं । इनमें ` को बड़ - छोट कहत अपराधू ` वाली स्थिति है । परन्तु छायावाद मुख्यत: तीव्रतम अनुभूतियों और कल्पना की सहज सफल अभिव्यक्ति है । तीव्रतम अनुभूति के ही क्षणों में कवि में एक तरफ विद्रोहात्मकता आता है और दूसरी ओर विध्वंस और निर्माण या सृजन की प्रवृत्ति । तीव्र अनुभूति के ही क्षणों में कवि कल्पना के पंख लगा कभी ` कहां, कहां वह स्वर्ण पुरातन, वह अतीत का काल ` कहकर उसके गौरव - गीत गाता है तो कभी स्वर्ण - सुख - श्री सौरभ - संयुक्त भविष्य की मादक कल्पना । भावात्मकता के अतिरेक में ही वह समस्त पुरातन जड़-बंधनों को तोड़ फेकने और सर्वत्र नवीनता का आवाहन करने में सफल हुआ है । इसीलिए छायावादी काव्य में जहां एक ओर विध्वंस है, वहीं दूसरी ओर निर्माण की प्रक्रिया भी ।

अनुभूति और कल्पना के बल पर ही कवि एक नवीन चिन्तना - धारा में प्रवाहित हो उठता है । जहां उसे ` एक ही तो असीम उल्लास, विश्व में पाता विविधाभास ` की अनुभूति होने लगती है । इस प्रकार की चिंतना प्रसाद के ` समरस थे जड़ या चेतन, ` पंत के ` एक कवि के असंख्य उद्गम ` में मिलती है और यही आंग्ल कवि वर्ड्सवर्थ के ` डिस्कार्डेन्ट एलिमेन्ट मेकिंग वन मेलाडी `[१] अथवा शेली के ` वन रिमेन्स मेनी चेंज एण्ड पास `[२] में मिलती है । यहीं पर छायावादी काव्य का व्यक्तिवाद

---

१ - वर्ड्सवर्थ : प्रिल्यूड : बुक वन ।

२ - शेली : एडोनिस ।

समष्टिवाद में परिणत हो जाता है । अत: छायावादी काव्यदृष्टि व्यष्टि के आभ्यान्तर की चिरन्तन सूक्ष्म अनुभूतियों की अभिव्यक्ति से होकर व्यक्ति - व्यक्ति परिव्याप्त समष्टि की शाश्वत मानव अनुभूतियों पर है । इस प्रकार यह व्यष्टिपरक होते हुए भी समष्टिपरक है । ' कालरिज का कहना है कि व्यक्तिगत अनुभूति को साधारणीकृत होकर निर्वैयक्तिक हो जाना चाहिए और प्रतिपादन भी ऐसा होना चाहिए कि उसमें वैयक्तिकता की छाप नहीं आने पावे । लेखक को उस तरह रचना की ओट में छिपा रहना चाहिए जिस तरह संसार अथवा प्रकृति की ओट में ईश्वर ।'[१] छायावादी काव्य में यही हुआ है । उसका उद्देश्य लोक है, व्यक्ति नहीं । उसका प्रारम्भ व्यक्तिवादी धरातल से होता है । अनुभूति और कल्पना के समन्वय से वह एक सर्वसामान्य लोक - धरातल पर पहुंच जाता है । ' वस्तुत: छायावादी काव्य सम्पूर्ण जड़ - चेतन प्राणियों को एक भावना - सूत्र में जोड़ता है, जिससे काव्य - सौन्दर्य का लोक धरातल पूर्णत: निखर उठता है । निश्चय ही इस धरातल पर पहुंचकर पाठक की संवेदना विस्तार पाती है और अपनी संकुचित सीमा से ऊपर उठने की प्रेरणा ग्रहण करता है ।'[२] छायावादी काव्य को यही एक उदात्त भावभूमि मिलती है । जिसमें सभी क्षुद्रताओं का अवसान हो जाता है । आलोच्यकाल की कविता में उदात्त - तत्व का समावेश हो जाता है । ऐसा करने में कवि को दर्शन का भी सहारा लेना पड़ा है । प्रसाद ने शैवों के प्रत्यभिज्ञा दर्शन के समरसता को स्वीकारा, तो निराला ने अद्वैत को, महादेवी ने वेदान्त दर्शन को और पंत ने यथासम्भव अनेक दर्शनों को । इस प्रकार छायावादी काव्य बौद्धिक भी हो उठा है परन्तु यह उसका मुख्य स्वर नहीं है । कल्पना और अनुभूति के क्षणों में ही कवि प्रकृति के प्रांगण में परिव्याप्त एक अनन्त चेतन रहस्य का भी दर्शन करता है जो नाना रूपों में अभिव्यक्त होकर भी अस्पष्ट और रहस्यमय है । छायावादी कवि प्रकृति, जीवन और जगत में परिव्याप्त इसी अवगुंठन

---

१ - रोमांटिक साहित्यशास्त्र : देवराज उपाध्याय : १९५१, पृष्ठ १४४ ।
२ - छायावादी काव्य और निराला : डा० शान्ति श्रीवास्तव : पृष्ठ ९९ ।

को सुलझाना चाहता है ।

सब कहते हैं ` खोलो, खोलो
छवि देखूंगा जीवन घन की ।
आवरण स्वयं बनते जाते
है भीड़ लग रही दर्शन की । (कामायनी)

अनुभूति और कल्पना की ऊंची उड़ान में कवि एक व्यापक विश्व का भी निर्माण कर लेता है और व्यापक मानवतावाद से ओत - प्रोत हो उठता है । वह कह उठता है - ` सबकी सेवा न पराई ` अथवा ` सब भेद - भाव भुलवाकर, सुख - दुःख को दृश्य बनाता, कह रे मानव यह मैं हूं, यह विश्व नीड़ बन जाता । ` कतिपय आलोचकों का आरोप है कि यह आत्म वाद की कविता है, वह अहम की अभिव्यक्ति है । यह ठीक नहीं । छायावाद की दृष्टि व्यष्टि से समष्टि तक व्याप्त है । जहां उसमें अतिसय व्यक्तिवादी भूमि को स्वीकृत है, वहीं उसकी चरम परिणति सर्वात्मवादी भी है । उसमें लोक - मंगल की दूत भावना भी है । अतः इस काव्य पर अहम एवं व्यक्तिवादी होने का आरोप केवल आरोप मात्र ही है ।

अनुभूति के क्षणों में छायावादी कवि एकतरफ अत्यन्त निराश भी हो उठता है और वह संसार से पलायन करना चाहता है । यहीं एक आक्षेप किया जाता है कि यह काव्य निराशा, कुण्ठा, पलायन की प्रवृत्तियों से ग्रस्त है । परन्तु जहां वह विश्व की तत्कालीन स्थितियों से निराश है, वहीं वह युग की जड़ता, दुष्कृतियों और दूषणों का निर्मूलकर अपने अदम्य उत्साह का भी परिचय देता है । इस प्रकार छायावादी काव्य में एक ` संतुलन ` आ जाता है । वह केवल नैराश्योद्भूत काव्य नहीं, नवसृजन की नव - प्रेरणा से अभिभूत एक उत्साह सम्पन्न काव्य है । जहां ` कामायनी ` के ` चिन्ता ` सर्ग में मनु की निराशा है, वहीं ` श्रद्धा ` सर्ग में ` डरो मत अरे अमृतसंतान, अग्रसर है मंगलमय वृद्धि ` की अमर उत्साह - सम्पन्नता । इस काव्य को पलायनवादी भी कहा गया । कवि विश्व की जीर्ण-शीर्ण दूषित मनः स्थितियों को देख कल्पना के पंख लगा एक स्वर्णिम संसार के स्वप्न देखता है जो छायावादी काव्य को एक अत्यन्त

उदात्त भावभूमि पर ला खड़ा करता है । यही तो छायावादी काव्य की अक्षय निधि है । यहां एक आदर्श लोक - संसार की कल्पना है जिसमें समस्त जड़ - चेतन एक अनिर्वचीय अंत:प्रकाश से प्रेरित सहज - प्रकृत गति से कार्य करते हैं । हम कह सकते हैं कि छायावादी कवि की दृष्टि प्रकृत रही है । वह कृत्रिम नहीं है । उसकी काव्य दृष्टि प्रकृत, स्वच्छन्द, सहज और सरल है जिसमें विश्व के सभी क्रिया कलाप स्वत: होते रहते हैं । उसमें बन्धन, कृत्रिमता और अप्राकृतिकता का नामोनिशां तक नहीं । इसी दृष्टि से प्रेरित हो छायावादी काव्य एक आदर्श विश्व और समाज के चित्र खींचता है । छायावादी कवि की वह व्यक्ति है जो ज्योति का आलिंगन करता है, तम के पार झांकता है - ` कौन, तम के पार रे कह ।` वस्तुत: भक्तिकालीन काव्य के बाद यदि कोई काव्य जिसने ` तमसो मा ज्योतिर्गमय ` का संदेश दिया तो वह छायावादी काव्य ही है । [१]

सब कहा जाय तो अनुभूतियों के प्रकृत एवं सूक्ष्म चित्रण, नवीन काव्य भूमियों के शोध, कल्पना के अमर - विलास, काव्य के शाश्वत मूल्यों के सफल चित्रण और विश्वमानवतावाद के सफल संदेश में यह काव्य अपना शानी नहीं रखता ।

छायावादी काव्य की अन्तर्मुखी दृष्टि ने उसके कलागत रूपों को भी प्रभावित किया । आचार्य शुक्ल के अनुसार छायावाद अभिव्यक्ति की एक शैली विशेष है । उनका यह कथन एकांगी है । छायावाद केवल अभिव्यक्ति की एक शैली विशेष ही नहीं है । उनपर के वर्णन से यह स्पष्ट है । छायावाद अपने सूक्ष्म भावों और अन्तर्वृत्तियों के निरूपण के लिए कला की नवीन भंगिमा को भी स्वीकार करता है । उसमें लाक्षणिकता, प्रतीकात्मकता, ध्वन्यात्मकता, वक्रोक्ति और नूतन छन्द विधान का भी समावेश हुआ । इस प्रकार छायावाद की इस अन्तर्मुखीनता ने विषय और कला दोनों में एक अद्भूत अपूर्व परिवर्तन कर दिया और यह कविता पूर्ववर्ती इतिवृत्तात्मक, उपदेश प्रधान और नीरस कविता से एकदम भिन्न हो उठी । हम कह सकते हैं कि द्विवेदी युगीन ` विरस पतझड़ ` के बाद छायावाद ` वसन्त का दूत ` बनकर आया ।

---

१ - प्रबन्ध प्रतिमा : पृष्ठ २६० ।

छायावादी कवियों ने काव्य-चिन्तन के प्रति भी अत्याधिक उत्साह व्यक्त किया है। उन्होंने काव्य का स्वरूप, काव्य के तत्व, काव्य के भेद, काव्य का वर्ण्य, काव्य-शिल्प और विशिष्ट काव्य प्रणालियों (छायावाद, रहस्यवाद, आदर्शवाद और यथार्थवाद) के विवेचन पर अधिक ध्यान दिया है, किन्तु, काव्यात्मा, रस, काव्य - प्रयोजन और काव्यालोचन के विषय में भी उनकी मान्यताओं में मौलिकता और तात्विकता का अभाव नहीं है। उनकी प्रधान विशेषता है कि उन्होंने काव्य शास्त्र को नीति शास्त्र के आग्रहों से मुक्त कर कलागत मूल्यों की सौन्दर्यवादी व्याख्या की है जहां तद्गुणगान अन्तर्मुखता का प्रयोग रहा है। सांस्कृतिक सौन्दर्य की अभिव्यक्ति को काव्य का गुण मानने के कारण वे नैतिक मूल्यों की उपेक्षा तो नहीं कर सकते थे, अत: उनका प्रयास यह रहा कि अनुभूति को इतिवृत्त के स्थूल परिचय से भिन्न रूप प्रदान कर सौन्दर्यात्मक अन्त:क्रान्ति और काल्पनिक अनुभूति पर बल दिया जाए। कल्पना मूलक मधुर भाव-व्यंजना, सूक्ष्म सौन्दर्यवर्णना एवं आत्म परिष्कार को कवि की आदर्श उपलब्धियां मानकर उन्होंने समरसता और आनन्द मार्ग की सिद्धि को इनका स्वाभाविक परिणति कहा है।

छायावाद के अनुसार, कविता कवि की तीव्रतम अनुभूति के क्षणों की स्वत:स्फूर्त निर्बंध भावोच्छ्वासों की वह स्वच्छन्द कलागत अभिव्यक्ति है जिसमें कल्पना के सहारे कवि की अहंकृति की झंकृति संसृति मे होने लगती है। यहां कविता को तीव्रतम अनुभूति कहा गया है जो वस्तुत: अन्तर्मुखी दृष्टि का परिचायक है। कविता की यह छायावादी दृष्टि अपने पूर्ववर्ती युगों की कविता संबंधी धारणाओं से बिल्कुल भिन्न थी। रीतिकाल में तो काव्य के अन्तरंग पर बल ही नहीं दिया जाता था। अवलोकन करें :-

पंडित और प्रवीनन की जाइ चित हरे, सो कवित्त कहावे। (ठाकुर)[1]

यहां कविता उसी को कहा गया है जो पंडितों और काव्य प्रवीणों को अपना चमत्कार दिखाकर आकर्षित कर ले। स्पष्ट है कि यहां चमत्कारमय उक्ति की ओर संकेत है।

---

१ - हिन्दी रीति साहित्य : डा० भगीरथ मिश्र : पृष्ठ १।

इसी प्रकार रीतिकाल के अन्य आचार्यों ने भी काव्य के वहिरंग की ओर ध्यान दिया है :

> शब्द अर्थ बिनु दोष गुन अलंकार रसवान ।
> ताको काव्य बखानिए, श्रीपति परम सुजान ।[१] - (श्रीपति)
>
> सगुन पदारथ दोष बिन, पिंगल मत अविरुद्ध ।
> भूषण जुत कवि कर्म जो सो कवित्त कहि बुद्ध ।[२] - (सोमनाथ)

परन्तु छायावाद युग में आकर काव्य के स्वरूप की वास्तविक व्यंजना हुई जिसमें अनुभूति और कल्पना को कलात्मक अभिव्यंजना मिली । इस प्रकार काव्य के स्वरूप के प्रति छायावादी दृष्टि अपने पूर्ववर्ती युगों से एकदम भिन्न थी और वह अन्तर्मुखी दृष्टि से प्रभावित थी ।

जहां तक काव्य के उपादानों की बात है वे भी काव्य की ऊपर की
परिभाषा में ही समाहित हो जाते हैं । छायावादी कविता के दो प्रमुख उपादान
हैं - अनुभूति और कल्पना । दोनों में कौन प्रधान है - कहना कठिन है परन्तु
अधिकांश आलोचक अनुभूति को ही प्राथमिकता प्रदान करते हैं । कल्पना में तो बुद्धि
तत्व का भी समावेश हो जाता है जबकि कविता में तीव्रतम अनुभूतियों का स्वतः
प्रवाह होता है । यहां छायावादी काव्य दृष्टि प्रकृत तत्व की ओर इशारा करती
है । अथवा हम यों भी कह सकते हैं कि छायावाद का प्रकृत काव्यदृष्टि है । तात्पर्य
यह कि वह कृत्रिमता या बौद्धिकता को स्थान नहीं देती है । कवि के अन्त:करण से
जो भाव स्वाभाविक रूप से निसृत होते हैं, उनकी सहज नैसर्गिक अभिव्यक्ति ही उसकी
दृष्टि है । यहां कला भी सायास नहीं लायी जाती । भावों या अनुभूतियों के
स्वतः प्रवाह के क्षणों में जो अभिव्यक्ति होती है उसमें सहज कलात्मकता आ ही जाती
है । वह बाह्य आरोपित नहीं, बुद्धि निरूपित नहीं, अपितु स्वभावतः अनायास आगत है ।

---

१ - २ - हिन्दी रीति साहित्य : डा० भगीरथ मिश्र, पृष्ठ १०८, १०६ ।

अतः छायावादी काव्य दृष्टि की दूसरी विशिष्टता है प्राकृतिकता । भावों के प्रकृत प्रवाह में प्रकृत रूप से निसृत कला ही छायावाद है । इस प्रकार छायावादी कविता का प्रथम उपकरण उसे प्रकृत दृष्टि प्रदान करता है और द्वितीय उपकरण उसे उदात्त और व्याप्त बनाने में सहायक होता है । वस्तुतः छायावादी कविता के ये दो उपादान - अनुभूति और कल्पना - मूल उपादान हैं ।

छायावादीकाव्य का उद्देश्य आनन्द और लोक - मंगल की भावना में निहित है । प्रसाद जी ने काव्य के उद्देश्यों में आनन्द तत्व को प्रमुख माना है । पंत जी के अनुसार ' लोक - मंगल ' ही काव्य का उद्देश्य है । उन्होंने इसके स्पष्टीकरण के लिए ' स्वान्तः सुखाय ' और ' बहुजन हिताय ' में कोई अन्तर नहीं माना है । महादेवी जी भी काव्य के उद्देश्यों में ' स्वान्तः सुखाय ' को ही प्रमुख मानती है परन्तु वे उसकी एक नवीन व्याख्या कर जाती हैं । उनके अनुसार ' स्वान्तः सुखाय ' ' आत्म परिष्कार ' का पर्यायवाची है । यह आत्मपरिष्कार, जैसा कि पूर्व विवेचित है, आनन्द का ही रूप है । छायावादी काव्य के इस उद्देश्य की ओर निर्देश करते हुए एक आलोचक ने लिखा है कि अब तक काव्यों के उद्देश्य लोकोत्तर आनन्द था, आधुनिक युग में कवियों का उद्देश्य लोक आनन्द बना । लोक महत्व के कारण ही व्यक्ति और लोक संबंधी कार्यों की श्रेष्ठता घोषित हुई । आधुनिक ज्ञान, विज्ञान ने असीम भौतिक समृद्धि का निर्माण किया और दर्शन ने उस समृद्धि को नैतिक समर्थन प्रदान किया । फिर क्या था, भौतिक समृद्धि और मानव सत्य ही चरम सत्य बन गए । इन्हीं के माध्यम से व्यक्ति ब्रह्म का साक्षात्कार करने लगा और लोक - सुख पारलौकिक स्वर्ग का पर्याय बन गया । कवि स्वर्ग की कामना नहीं करते, मोक्ष की चिंता नहीं करते क्योंकि स्वर्ग या मोक्ष दोनों लोक में ही उतर आये । दर्शन का अद्वैतमानव-लोक का अद्वैत बन गया और इसी की साधना प्रारम्भ हुई । ईश्वर भक्ति अब लोक - भक्ति बन गयी । इस प्रकार विश्व दर्शन के अनुरूप वेदान्त दर्शन की व्याख्या हुई और लोक - परलोक का समन्वय इसी जगत में स्थापित किया गया । छायावादी काव्य इसी समन्वय का परिणाम है ।[१] इस प्रकार छायावादी काव्य में आनन्द और लोक - मंगल दो प्रमुख उद्देश्य थे ।

---

१ - छायावादी काव्य और निराला : डा० कु० शान्ति :विवास्तव : पृष्ठ १११, १९६६ ।

काव्य - वस्तु के प्रति छायावादी काव्य की दृष्टि विषयी निष्ठ रही। इसका विवेचन पहले हो चुका है। छायावाद पूर्व कवियों की दृष्टि विषयगत अधिक थी, वह अभिधामूलक थी। वस्तुओं को उसके बाह्य रूप में ज्यों का त्यों स्वीकार पूर्ववर्ती युगों में था। छायावाद ने वस्तुओं अथवा वर्ण्य के भीतर की ओर झांका। छायावादी कवि वस्तु या वर्ण्य का बाह्य - चित्रण करके ही संतुष्ट नहीं हो जाते थे। वे तो वस्तुओं के भीतरी रूप को देखते थे। अथवा यों कहें कि छायावादी कवि बाह्य के उपर अपनी भावना का आरोप करता था। बाहर के स्थूल रूप पर आभ्यन्तर के सूक्ष्म का आरोपण ही छायावाद है। इस प्रकार छायावाद में आभ्यान्तर की अभिव्यक्ति हुई। काव्य का विषय स्थूल न रहकर सूक्ष्म हुआ। कवियों ने प्राचीन वस्तुओं को नवता प्रदान किया अथवा वस्तुओं या वर्ण्य के प्रति नवीन दृष्टि अपनायी। अतः हम कह सकते हैं कि छायावादी काव्य दृष्ट काव्य वस्तु के क्षेत्र में विषयीनिष्ठ रही:- " वस्तु विभव से भाव विभव में उर केन्द्रित कर "[१] यहां वस्तुओं पर काव की मनसा का आरोप है - " छायावादी कविता में रूप पर भाव का आरोप होता था — छायावादी कवि पहले मन में कोई भाव पैदा कर लेते थे फिर सामने रूप दिखायी पड़ा तो उसी पर भाव आरोपित कर देते थे।"[२] प्रसाद ने इसी को " हृदय की अनकृति बाह्य " कहा है।

यह काव्य दृष्ट नवीनतावादी था। इसने काव्य को नई - नई भूमियों की शोध की ओर वस्तुओं को नए रूप में प्रस्तुत किया। इस युग में प्रधान वर्ण्य - प्रकृति, प्रेम, सौन्दर्य, राष्ट्रीयता, स्वातंत्र्य और विश्वमानवतावाद थे। यद्यपि ये सभी पूर्ववर्ती काव्य में भी थे परन्तु छायावादी कवि ने इन्हें नवीन ढंग से वर्णन किया। इस प्रकार विषय को नवीन रूप में देखने की दृष्टि छायावाद में थी।

---

१ - साप्ताहिक हिन्दुस्तान, २२ जनवरी १९७८।
२ - साप्ताहिक हिन्दुस्तान, २८-९-६९, डा० राम विलास शर्मा का लेख " नई कविता, नये प्रतिमानों की खोज में "।

जहां तक मूल्य दृष्टि की बात है, छायावादी काव्य सभी युगों से आगे है। उसने रीतिकालीन मूल्यों से एकदम भिन्न मूल्यदृष्टि का परिचय दिया। यह मूल्य दृष्टि द्विवेदी युग से ही परिवर्तित हो रही थी यद्यपि कि उसकी भावभूमि शुष्क और नीरस थी। इसके विपरीत छायावादी कवि ने नवीन मूल्यों की स्थापना मनोरम रसमयी भूमि पर की। इस युग में मानव मूल्यों की अभिनव प्रतिष्ठा हुई अथवा हम कह सकते हैं कि नवमानवतावाद का प्रतिफलन हुआ। यह मानवतावाद कवि की अन्तर्मुखीनताजन्य व्यक्तिनिष्ठता के कारण आया। अभिनव मानव मूल्यों स्थापना हुई और आगे चलकर यह विश्ववाद में परिणत हो गया। यही नहीं, इस युग मनोवैज्ञानिक, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक मूल्यों की स्थापनाएं हुई। इस प्रकार छायावादी काव्य एक निराला संदेश लेकर हमारे सामने प्रस्तुत हुआ। छायावादी काव्य व्यक्तिनिष्ठ न होकर मूल्यनिष्ठ रहा है। उसमें व्यक्ति मूल्य का प्रतिनिधि रहा है और जैसे - जैसे मूल्य के प्रति दृष्टिकोण का विकास होता रहा उसका व्यक्तित्व भी विकसित होकर युग के सम्मुख एक अधिक व्यापक आदर्शोन्मुखी तथा यथार्थ आधृत जीवन दृष्टि उपस्थित करने की चेष्टा करता रहा। छायावादी आदर्श विगत युगों की एक देशीय उदात्तता को अतिक्रम कर विश्वमुखी औदात्य से अनुप्राणित रहा है।[१] इस प्रकार मूल्यदृष्टि ने भी छायावादी काव्यदृष्टि में महान परिवर्तन कर दिया है। वह एक देशीय न रहकर सार्वदेशीय हो गया है, वह एक युग की वस्तु न होकर युग - युग की वस्तु हो गया है।

इस प्रकार छायावाद का मूल केवल नवीन भाव-बोध तक ही सीमित नहीं रहा, अपितु उसने रूप-विन्यास की सूक्ष्मता और सरलता की ओर ध्यान दिया। छायावादी कवियों ने भाषा, अलंकार और छन्द तीनों के क्षेत्र में नवीनताओं और सूक्ष्मताओं का समावेश किया। भाषा के अन्तर्गत चित्रात्मकता, लाक्षणिकता, रागात्मकता, सौन्दर्यमय प्रतीक विधान और वक्रता को महत्व देकर यह स्पष्ट कर दिया कि भाषा का वस्तु आधार ही पर्याप्त नहीं है, अपितु कवि को भाषा के अन्तराल में प्रवेश करना चाहिए

और उसमें सूक्ष्म मनोविज्ञान का उद्घाटन करना चाहिए । ये स्थापनाएं हिन्दी काव्य शास्त्र के लिए नवीन थीं । चित्रराग को भाषा का गुण मानना पंत जी की मौलिक उद्भावना है ।

छायावादी कवियों का अलंकरण संबंधी दृष्टिकोण भी रूढ़ि-रीतियों से मुक्त है । उन्होंने शब्दालंकारों और अर्थालंकारों का अन्तःसंबद्धता पर बल देकर नवीन सूक्ष्म - सौन्दर्य के वहन को उसका प्रकृत गुण माना । अलंकारों के प्रति पाश्चात्य दृष्टिकोणों को भी इन कवियों ने अपनाया । इस प्रकार पौर्वात्य और पाश्चात्य दोनों प्रकार की दृष्टि - समन्वय द्वारा इन कवियों ने एक नवीन अलंकरण विधान की सृष्टि की । इन कवियों के अलंकार स्वाभाविक रूप से आए हैं, बाह्य प्रकोपित नहीं ।

छन्दों के क्षेत्र में तो इन्होंने महान परिवर्तन किया । ये छन्द पूर्ववर्ती छन्दों से कई प्रकार से भिन्न थे । वार्णिक की अपेक्षा मात्रिक छन्दों का अधिक प्रयोग, समछन्दों को अर्द्धसम में लिखना, नवीन सम तथा अर्द्धसम छन्दों का आविष्कार, विषम चरणों के क्रमायोजन द्वारा नवीन छन्द निर्माण, पदान्त प्रवाही प्रयोग, चरणान्त में अतुकान्त प्रवर्तन तथा लयाश्रित मुक्तछन्द की सृष्टि आदि ऐसी अनेक विशेषताएं हैं जो छन्द योजना के क्षेत्र में हिन्दी कविता को छायावादी कविता से मिली है । छायावादी छन्दों पर अंग्रेजी, उर्दू, बंगला छन्दों का भी प्रभाव है । इस युग में ' मुक्त - गीत ' नाम की नई गीत शैली का जन्म हुआ ।

छायावादी मुक्त छन्द तीन प्रकार के हैं - (१) अन्त्यानुप्रास सहित विषम प्रयोग (२) अन्त्यानुप्रास रहित विषम प्रयोग तथा (३) मिश्र प्रयोग । छायावादी मुक्त छन्द लयाश्रित हैं । इनमें से कुछ में वर्णिक लयाधार तथा अधिकांश में मात्रिक लयाधार है । वर्णिक लयाधार वाले छन्दों में प्रायः घनाक्षरी के लय खण्डों (वर्गों) का प्रयोग हुआ है । मात्रिक लयाधार वाले छन्दों में किसी छन्द विशेष का आधार

नहीं है । इन छन्दों में वर्णों तथा मात्राओं के ऊपर लय (रिद्म) का शासन है । यह लय छायावादी मुक्त छन्द का प्राण है । [१]

छायावादी कवियों ने भावना और शैली को नए आकार प्रदान करने की इच्छा से नूतन काव्यशास्त्र के निर्माण का प्रयास किया है । अन्य काव्यांगों में उन्होंने काव्य रचना के रूपों का भी मार्मिक विश्लेषण किया है । उन्होंने महाकाव्य की अपेक्षा गीतिकाव्य के विवेचन में अधिक मनोयोग का परिचय दिया है । गीतिकाव्य की भावात्मक और कलात्मक विशेषताओं के अतिरिक्त उसके भेदों की सर्वप्रथम चर्चा करने का श्रेय भी क्रमशः निराला और महादेवी को ही है । इसके अतिरिक्त पंत ने गीत गद्य संबंधी मत को भी नवीन उद्भावनाओं के रूप में प्रस्तुत किया है ।

निष्कर्षतः छायावाद, काव्य का आत्मपरक व्याख्या करता है । काव्य को आत्मा की अभिव्यक्ति और उसी का प्रकाशन मानता है : उस आत्मिक का जिसमें बाह्य और अन्तर का भेद नहीं रहता । काव्य के रूप और विषय को लेकर भी छायावाद का स्पष्ट निर्देश भावाश्रित ही है । अभिव्यंजना वाह्य आकृति है और इसका कोई स्पष्ट दिशा - निर्देश इसलिए भी कठिन है कि प्रत्येक कवि के अनुरूप ही उसमें भेद होता है । भाषा को पंत भावानुरूपणी मानते हैं, निराला अनुगामिनी । महादेवी का प्रतीक की ओर विशेष आग्रह रहा है । छायावादी काव्य में अन्तःप्रेरणा और अभिव्यक्ति का संबंध घनिष्ठ माना गया है । छन्द के प्रति सामान्य विद्रोह के बाद भी छायावादी कविता में लय का विरोध नहीं है, उसका महत्व स्वच्छन्द छन्द में भी है । छायावादी कविता मूलतः अन्तर्वाह्य अनुभूतियों से संबद्ध है और जिस प्रकार अंग्रेजी रोमांटिक धारा के कवियों ने कविता की प्राचीन मान्यताओं को अमान्य घोषित

---

१ - हिन्दी का छायावादी कविता का कला - विधान : डा० बलवीर सिंह रत्न पृष्ठ ३१६ ।

किया। उसे नये रूप में देखा, उसी प्रकार छायावादी कवियों ने भी कविता को नई दृष्टि दी। द्विवेदी युगीन काव्य शास्त्रीय आचारवादिता, व्यावहारिक नीति-निष्ठा और उपयोगिता परक मूल्यों के स्थान पर उसके स्वत: के नये मूल्य हैं। द्विवेदी युगीन रूढ़कल्पना और सीमित भावुकता और मर्यादा एवं अनुशासन के विरोध में एक मुक्ति के भाव और सहज भावमूलकता को छायावादी कविता ने अपना आधार बनाया। अपनी काव्य-दृष्टि में वह मानवीय मूल्यों और मानव के मूलगत संवेगों को अधिक महत्वपूर्ण समझती है।'[1]

समासत: छायावादी काव्यदृष्टि का प्राण तत्व है - व्यक्तिनिष्ठ कल्पना प्रवण भावात्मक दृष्टिकोण जो इस काव्य की अन्तर्मुखीनता से उद्बुद्ध है। वस्तुत: छायावादी काव्य की अन्तर्मुखी दृष्टि ही उसका न्यूक्लियस है। 'उनकी (छायावादी कवियों की) रचना की सम्पूर्ण विशेषताएं उनकी इस 'दृष्टि' पर ही अवलम्बित रहती है। वह क्षण भर में बिजली की तरह वस्तु को स्पर्श करती हुई निकल जाती है ------ अस्थिरता और क्षणिकता के साथ उसमें एक प्रकार की विचित्र उन्मादकता और अन्तरंगता होती है ------ उसके इस अन्यरूप का संबंध कवि के अन्तर्जगत से रहता है। -------- यह अंतरंग दृष्टि ही छायावाद की विचित्र प्रकाशन रीति का मूल है।'[2] इसी दृष्टि से उद्भूत हुई विषयी प्रधान और नवीनतावादी दृष्टियां जो वैयक्तिक वैभिन्य का आधार लेकर अनेक रूपों में प्रकट हुई। छायावादी काव्य की एक प्रकृत दृष्टि भी है। इन सभी के समष्टिगत प्रभावों के कारण काव्य, उसके स्वरूप, उसके विविध रूपों और कलागत क्षेत्रों में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ वस्तुत: यह अन्तर्मुखी दृष्टि ही छायावादी काव्य दृष्टि का न्यूक्लियस है, उसका प्राण तत्व है और उसका जीवन - सर्वस्व है जो उसके सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दोनों रूपों में प्रकट हुआ है। संक्षेप में, छायावादी काव्य दृष्टि अन्तर्मुखी, विषयीनिष्ठ,

---

१ - निराला काव्य : पुनर्मूल्यांकन : डा० धनंजय वर्मा : पृष्ठ ८४।
२ - श्री शारदा पत्रिका : सितम्बर १९२०, श्री मुकुटधर पाण्डेय अ छायावाद क्या है।

आत्मपरक, प्रकृत एवं नवीनतावादी हैं । फलतः इसने हिन्दी कविता में युगान्तर किया और उसका अपना ऐतिहासिक अटल व्यक्तित्व है । उसकी काव्यदृष्टि भी चली आती हुई काव्य परम्परा से भिन्नता रखती है ।

अंततः यह कहना उपयुक्त होगा कि छायावादी काव्य दृष्टि ने पूर्ववर्ती काव्य-मान्यताओं की अपेक्षा काव्यशास्त्र की अधिक मौलिक और व्यवस्थित मीमांसा की है । छायावादी कवियों ने अपने अध्ययन, मनन और कल्पना द्वारा प्रधानतः काव्यशास्त्र में रोमानी मूल्यों की स्थापना द्वारा अपनी विद्रोहात्मक नवीनता प्रिय एवं कल्पना प्रवण भावात्मक दृष्टि का परिचय दिया है और सामान्यतः अधिकांश विचारों को रूढ़िबद्ध न होने देने का सफल प्रयास किया है ।

--:0:--